१९५३
प्रथम संस्करण

मूल्य ढाई रुपये

प्रोग्रेसिव पब्लिशर्ज़, ७/२३, दरियागंज, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित और
गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दरियागंज, दिल्ली, द्वारा मुद्रित।

कृष्णचन्द्र की कहानियों की यह तीसरी किताब भी लीजिए, पहली 'मछली जाल' और दूसरी 'मेरे दोस्त का बेटा'।

कृष्णचन्द्र की और भी किताबें हिन्दी मे छपी हैं पर इनमे हमने कहानियो की जान कृष्ण की भाषा को वही बनाये रखा है जिसमें ये कहानियाँ लिखी जाती हैं—उसमें ऊपर से बोझिल शब्दों को हिन्दी की दुहाई देकर नहीं ठूँसा है। और यही हिन्दी है। हो सकता है कि कुछ शब्द पराये से लगें पर हिन्दी में आज किसकी भाषा ऐसी है जो हर पाठक को समझ आ जाय। हिन्दी का भविष्य इसी मे है कि हिन्दी के द्वार खुले रहें और प्रान्तीय भाषाओं के जो शब्द पच सकें पचा लिए जाएँ—यदि संस्कृत के विकृत रूप को हिन्दी मानकर चलेंगे तो वह चलाये तो चल लेगी—पर स्वयं चलकर बढेगी नहीं। हिन्दी के उस विराट् रूप की वृद्धि के लिए कृष्णचन्द्र-जैसे कलाकारों के स्वागत की आवश्यकता है जो ऐसी भाषा लिखते हैं जो कलापूर्ण भी है और इतनी सहज भी।

—प्रगति प्रकाशन

सूची

गीत और पत्थर

नफ़रत भी एक किस्म की मुहब्बत है। अजाज़ हुसैन ज़ैदी का उदाहरण आपके सामने है। ज़ैदी को औरतों से नफरत है क्योंकि ज़ैदी बदसूरत है और उसे अपनी बदसूरती का बहुत ख़याल है। ज़ैदी ठिगना बल्कि बौना है और उसे अपने छोटे कद होने पर मान नहीं। ज़ैदी की चाल में एक प्रकार का बेढब्या-पन है जिसे देखकर अपने-आप हँसी आ जाय और जब उसका दिल रखने के लिए लोग उस पर हँसते नहीं उसकी इज़्ज़त करते हैं, उसकी आवभगत अच्छे ढंग से करते हैं, ख़ासतौर पर उसे अपने पास बिठाने का यत्न करते हैं तो वह और भी नाराज़ होता है और बिगड़ जाता है। शायद वह दिल से चाहता है कि लोग उसे बदसूरत, ठिगना, बौना कहें, उसे गाली दें, उससे दूर-दूर रहें। मैंने प्रायः देखा है जो लोग उसे फटकारते हैं वह उनसे खुश रहता है और जो लोग उसके दिल को खुश रखने की कोशिश करते हैं वह उन्हें अच्छा नहीं समझता बल्कि उसके दिल को खुश रखने की जितनी कोशिश की जाय वह उतना ही दुखी हो जाता है।

मेरे देखने में ज़ैदी पहला आदमी है जो इस सीमा तक अपने-आप को कष्ट देना पसन्द करता है कि हर वक्त अपने-आपको मानसिक तौर पर कोड़े मारता रहता है। ज़ैदी बीसवीं सदी का रहने वाला है इस-

लिए एक फिल्म कम्पनी का असिस्टेन्ट डायरेक्टर है। अगर वह मोल-हवीं सदी में होता तो कैथोलिक साधु होता, कट्टर मुल्ला होता। लेकिन बीसवीं सदी ने इसे फिल्म डायरेक्टर का ऐसिस्टेन्ट बना दिया है। उसे इस बात में भी मज़ा आता है कि उसके भाग इतने बुरे हैं। लोग सुन्दर चीजों, अच्छी बातों और अच्छे गुणों से लाभ उठाते हैं। ज़ैदी को दुःख, दर्द, पाप, बदसूरती और उस गहराई में रुचि है जो नीचे जाती है। जो चीज ऊपर उठती है जैसे आसमान, पेड़ की चोटी, कबूतर की उड़ान, इन बातों में उसकी दिलचस्पी नहीं टिकती। वह बुराई घृणा आदि में विश्वास रखता है और उसमें और फरिश्तों में केवल एक कदम का अन्तर है।

ज़ैदी को औरतों से सख़्त नफरत है। वह उनकी छाया से भी नफ़रत करता है। वह उनको बिलकुल हीन समझता है। शोपनहार का मानने वाला है। स्टूडियो में जहां औरतें खड़ी होंगी वहां लोगों के ठठ-के-ठठ नज़र आयेंगे मगर ज़ैदी कभी वहां न होगा। अगर कभी उसे लड़कियों के पास से गुजरना पड़े तो वह इस तरह अकड़कर, इस तरह तनकर चलता है कि उसकी हालत पर हँसी आती है जैसे उसके शरीर का कण-कण औरत-औरत पुकार रहा हो। भूख जब इस मंजिल पर पहुँच जाय तो नफ़रत बन जाती है। भूख असल में जीवन गति और कर्म की निशानी है। लेकिन भूख की आखिरी मंजिल मौत, जड़ता और गतिरोध भी है। ज़ैदी के सेक्स भाव इतने क्षीण हो चुके हैं कि शायद उसे मर्द कहना भी अत्युक्ति होगा। ज़ैदी की मर्दानगी ने अपनी बदसूरती से मात खाई और यह बदसूरती औरत की सुन्दरता से टकराकर नफरत में बदल गई। अब वह मर्द है न औरत। सिर से पांव तक जीती-जागती घृणा है। वह एक ऐसी चिन्तित आत्मा है जिसने अपने-आप को उलझा-उलझा कर गाँठें लगा ली हैं और अब इन गांठों का खुलना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। शायद अब वह सीधी रेखा को सह नहीं सकेगा। ज़ैदी की यह हालत हमारे देश के बहुत से

नेताओं से मिलती-जुलती है।

ज़ैदी से अगर यह कहा जाय कि अमुक औरत को सेट पर उपस्थित होना चाहिए तो पहले तो ज़ैदी सुनी अनसुनी कर देगा। दोहराने पर इस तरह घूरेगा मानों आपने यह कहकर कोई बड़ा भारी अपराध किया है और अगर आप अधिक ढीठ निकले तो वह सेट छोड़कर बाहर चला जायगा और वहा से बुलाने के लिए किसी चपरासी को भेजेगा या कोई दूसरा आदमी ढूँढेगा। अगर मजबूर हो जाय और उसे ही जाना पड़े तो लड़की के सामने खड़े होकर हवा से बात करेगा 'सेट पर आइये' और उसके बाद एकदम वहा से चल देगा। उसके काम में ऐसे में कोई गति नहीं होती। प्राय जीवन में एक क्रम होता है। हर एक काम में तो प्रभाव का एक अनुभव होता है। ज़ैदी को देखकर इस समय यह अनुभव होता है कि यह मनुष्य नहीं बे-जान है जो उठाकर लड़की के सामने लाया जा रहा है। उसकी चाल-ढाल, बात करने का ढग, आचरण में एक निराली-सी निर्जीवता और ढीली-सी गति का अनुभव होता है। ऑटो मशीन के बेताल पुर्जे शायद इनसे अच्छे होते होंगे। विशेषकर औरतों का असर मर्दों पर बहुत होता है। सख्त असर होता है। जहा तक जीवन की और पुनर्निर्माण की प्रेरणा रहती यह असर रहता है। लेकिन जितना असर इसका मैंने ज़ैदी पर देखा है वह किसी और पर नहीं देखा। ऐसा मालूम होता है जैसे ज़ैदी का शरीर और आत्मा का प्रत्येक कण एक आग है और औरत के अस्तित्व का अनुभव करते हुए भी उसे अस्वीकार करने के लिए बेचैन है। लोग दो आँखों से औरत को देखते हैं और मर जाते हैं। ज़ैदी करोड़ों आँखों से देखता है। उसके दिल की क्या दशा होगी मैं समझता हूँ। यहाँ पहुचकर मुहब्बत नफ़रत में और जिन्दगी मौत में बदल जाती है।

जब हमारे स्टूडियो में रम्भा पहली बार आई तो प्रोड्यूसर से लेकर सेटिंग बॉय तक सब खुशी से चहकने लगे। असल बात यह है कि

सुन्दर औरत खुशी का एक क्षण है जो स्वर्ग की वादियों से इस लोक तक आता है। फिर इस क्षण को पाने, चखने, प्राप्त करने, इसके लिए मर जाने के लिए उत्सुक तड़प क्यों न हो? और रम्भा तो ऐसी औरत थी जैसे हँसती लहर, लहकती डाली, महकती कली, जैसे वायुमंडल में मुस्कान की कमान खिंच जाय और गुम हो जाय और गुम हो जाने के बाद भी कल्पना में इसके रंग चमकते रहें। यही हाल रम्भा का था। औरतें जवान भी होती हैं खूबसूरत भी होती हैं, कविता रस और माधुर्य से छलकती भी होती हैं लेकिन रम्भा के रूप की लहर दूसरी औरतों से एकदम अलग थी। उसके रूप का अनुभव उसके सामने नहीं उसके सामने से गुजर जाने के बाद होता था, जैसे कोई चीज चमक गई। वह सामने से निकल जाती और बाद में खयाल आता, खयाल नहीं आता तस्वीरें-सी आतीं, फूलों के गुजरे, इन्द्र-धनुष के रंग, बच्चों ी मुस्कान, आसमान की सतरंगिनियाँ, रात में दूध गंगा के दूधिए कण, तियों की लड़ी एकाएक बिखरती हुई। इन सब तस्वीरों का खयाल से देखकर आता था। उसका रूप नाशवान था लेकिन इस रूप की ज देर तक रहने वाली थी। जो तसवीरें उस रूप को देखकर उजागर ती थीं वे अमर थीं। रूप की इससे अच्छी परिभाषा नहीं हो सकती। को देखकर यह खयाल न आता था कि यह औरत फिल्म ऐक्ट्रेस बीवी है, बच्चों की माँ है, गमे रोज़गार और दुनिया के दुखों मे घत हो चुकी है। वह जिधर जाती थी वातावरण में एक लपट- उठती थी, कई परवाने जलकर राख हो गए।

यह बात असम्भव थी कि ऐसे व्यक्ति से ज़ैदी को घृणा न होती। बहुत नीची जगह में रहने वाला ऊँचाई से घृणा क्यों न करता? अगर मुहब्बत नफ़रत है तो गहराई भी एक तरह की उल्टी ऊँचाई है। उसकी कल्पना मे वे सीमान्त न थे जहाँ बिजली का कौंदा लहराता है, वह उस अन्धेरे क्षितिज तक पहुँच गया था जहाँ लजलजा कीचड़ इकट्ठा हो जाता है और खयाल मे कीड़े रेंगने लगते हैं। जैसे 'हाँ' और 'ना' एक-

दूसरे से अलग रहते हैं वैसे रम्भा और ज़ैदी सेट पर एक-दूसरे से अलग और दूर रहने लगे।

मनुष्य-स्वभाव पानी की तरह अपना समतल रखता है। रंभा नफ़रत न कर सकती थी। वह तो क्षितिज पर चाँद की किरण थी, वह पर फैलाए डोलती-डोलती नीचे उतरी, मुस्कराई, लजाई, मोम हो गई। वह ज़ैदी के लिए इतनी नरम बन गयी कि ज़ैदी उसे निगल भी न सका। खुद पिघल भी न सका। रम्भा ज़ैदी से हँसकर बात करती तो ज़ैदी रूखे-से जवाब देता। रम्भा उसे चाय मँगवाने को कहती तो वह जान-बूझकर चाय न मँगवाता। रम्भा कहती, "ज़ैदी साहब, आपके कपड़े मैले हैं।" ज़ैदी दूसरे दिन अधिक मैले कपड़ों में आता। रम्भा कहती, "दाढ़ी बढ़ाई हुई है, रोज शेव किया कीजिए, ज़ैदी साहब।" ज़ैदी ने सचमुच दाढ़ी बढ़ा ली। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की-सी दाढ़ी, छिदरी-छिदरी लम्बूतरी दाढ़ी, जो ज़ैदी के चेहरे को अजीब रूप देती। रम्भा कहती, "अमुक पिक्चर बहुत अच्छी है, आइए देख आएँ।" ज़ैदी जवाब दिये बिना किसी दूसरी पिक्चर में चला जाता चाहे कि एक घंटा पहले स्वयं इस पिक्चर को देखने को इच्छुक होता और अपने दोस्तों के साथ वहीं जा रहा होता था। उसका शरीर और उसकी आत्मा अपने पूरे बल व वेग से रम्भा के विरुद्ध यत्न कर रहे थे। उसने शायद सोच रखा था कि मेरी बदसूरती रोती जायगी मगर हार नहीं मानेगी। उसकी आँखों की मजनू-जैसी चमक कहे देती थी कि टक्कर बहुत सख्त है।

रम्भा ने अपना रंग नहीं बदला। यह तो कहना ठीक नहीं कि उसे ज़ैदी से कोई लगाव था। हाँ, इतनी दिलचस्पी जरूर थी कि वह औरत से नफरत के भाव को जरूर जीतना चाहती थी उसके लिए बराबर यत्न कर रही थी लेकिन क्योंकि वह खुद अत्यन्त सुन्दर थी और सुन्दरता में इतना मान होता है कि वह इतना हठ सहन नहीं कर सकती। मेरा मतलब यह है कि सुन्दरता स्वयं चमकती है, सुन्दरता इतनी चमकीली होती है कि उसे चमकना ही चाहिए। उसके स्वभाव से रोशनी

फूट-फूटकर निकलती है। ज़ैदी भी कम नहीं। जैसे जली हुई लकड़ियाँ जिनसे फूँक-फूँककर आग जलाई जाय। रम्भा हर समय समझती थी। इस भाव से कम काम लेती थी कि वह खुद आग थी। समझती थी एक दिन जला बैठूँगी, इसलिए मुस्कराती थी, हँसती थी, नम्र होती थी—जैसे रुई का गाला। वह धीरे-धीरे ज़ैदी के दिल पर फिरती थी जैसे मुर्गी अंडे पर। उसके भावों के नरम-नरम पंख ज़ैदी के दिमाग की पथरीली सतह को छूते रहते थे और यह बिलकुल अनजानपने में होता था इस तरह भोलेपन और मासूमियत से कि ज़ैदी की नफ़रत और भी बढ़ गई।

अब तक ज़ैदी की नफ़रत की मंज़िल यह थी कि कम देखता था, अपने में ही रहता था और लापरवाह रहता था। अब नफ़रत इतनी बढ़ गई कि उसने रम्भा से कभी-कभी बात करना शुरू कर दिया। "यहाँ मत बैठिए, यह कुरसी अच्छी है, वह आदमी बुरा है, यह प्याला टूटा हुआ है, यह वाक्य गलत है, यह कोण ठीक है।" छोटे-छोटे वाक्य, सख्त, रूखे, नपे-तुले, सख्ती के लहजे में, एक झटके से, बल खाते हुए। पत्थर गुलाब की कली की तरह झुक रहा था।

फिर यह नफ़रत और बढ़ी जब रम्भा ने शान्त से प्यार करना शुरू किया। शान्त हीरो था, रम्भा हिरोइन। प्यार इतना ही आवश्यक था जैसे दो वक्त का खाना या साड़ी के साथ ब्लाउज़ पहनना। ज़ैदी इस मुहब्बत को और पास ला रहा था। वह दोनों को इकट्ठे होने का मौक़ा देता, शॉट से पहले दोनों को अलग ले जाकर रिहर्सल के बहाने दोनों को अलग छोड़ देता, चाय के प्यालों में शराब लाकर देता कि सेट पर शराब पीना मना है चाय पीना नहीं इसलिए बेदूध की कह कर शराब मँगाई जाती। और ज़ैदी यह बेदूध की चाय खुद लाता था और रम्भा और शान्त की प्यार-भरी हरकतों से अपने घृणा के भाव को बढ़ाता था। शायद उसे यह खयाल था कि औरतें कितनी मूर्ख होती हैं, कैसे रीझ जाती हैं, किस तरह शान्त-जैसे गुण्डे से प्यार कर सकती हैं,

कितनी जल्दी बेवफाई का चोला पहन लेती हैं। ये औरतें नफ़रत के लायक ही तो हैं। ज्यों-ज्यों ज़ैदी की नफरत बढ़ती गई वह और भी रम्भा के करीब होता चला गया। अब उसकी बातों की कड़ुआहट गायब थी, वह उसके सामने हँस देता था, कहकहे लगाता था, पंच और इलस्ट्रेटेड वीकली के चुटकुले सुनाता था, उसे पढ़ने के लिए किताबें देता था। रम्भा उसके लिए स्वेटर बुन रही थी। पिछले दिनों जब उसका पति आया तो ज़ैदी ने उसे इस तरह बातों में उलझाए रखा कि शान्त और रम्भा को अकेले पिक्चर जाने का मौका भी हाथ लग गया। यह औरत! ज़ैदी दिल में हँसता था। बदसूरती खूबसूरती पर जीत गई है।

यह नफरत यूँ ही चलती गई यहाँ तक कि पिक्चर का अन्तिम दिन आ गया। ज़ैदी सेट पर नहीं आया। पिक्चर खतम हो गई, तालियाँ, फूल, हार, मिठाई, हँसी-खुशी। परसों रम्भा वापस चली जायगी अपने पति के पास। शान्त पेशेवर प्रेमियों की तरह दुखी, दाढ़ी बढ़ाए, बाल बिखेरे रंभा के सामने आहें भरता था और वह अपने रूप के अमर पर मुस्कराती थी। फिर उसने किसी से पूछा, "ज़ैदी कहाँ है?" यूँ ही लापरवाही से जैसे आदमी किसी बहुत ही ज़रूरी बात का चर्चा करते-करते अपने कुत्ते को पुचकारने लगे। ज़ैदी कहाँ है, मोती कहाँ है, टब्बू कहाँ है, बेचारा बदसूरत, निराश, बेबस बीमार कहाँ है। वह उसे ढूँढती फिरी, प्रोजेक्शन रूम में, कैमरा रूम में, साउंड के कमरा में, दफ्तर में, उसके अपने कमरे में, पर वह कहीं न था। आखिर वह म्यूज़िक रूम में था।

म्यूज़िक रूम में अँधेरा था। अँधेरी और ऊँची खिड़की की भारी में से उसने झाँक कर देखा कि ज़ैदी प्यानो पर बैठा गा रहा है—

ऐ गमे दिल क्या करूँ ऐ वहशते दिल क्या करूँ

उसके गले में दर्द, पुकार, स्वर कुछ नहीं था मगर लय ज़रूर थी। भारी बोझ से जैसे गीत पत्थर बन जाय और छाती पर बैठ जाय, जैसे

मौत का अन्धेरा रोशनी की किरण पर छा जाय और सृष्टि की तरफ बढ़ता जाय, जैसे नफरत की चट्टान पिघल-पिघलकर मुहब्बत के लावे में बदल जाय।

ज़ैदी गाते-गाते प्यानो पर सिर रखकर रोने लगा। बदसूरती का फूल खिल गया था। रम्भा भी खिड़की पर खड़ी-खड़ी रोने लगी।

वह एक दिन और एक रात इसी संगीत-घर में बन्द रहा। वास्तव में वह बन्द नहीं था। उसने सारी सृष्टि को बाहर ढकेलकर अपने-आप को आजाद कर लिया था। दुनिया और उसके दुख और उसके गम और उसके दिखावे उस संगीत-घर के बाहर कैद कर दिये गए थे और वह सबसे आजाद अपनी आत्मा का संगीत सुन रहा था। 'ऐ गमे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ।'

रात-भर और दिन-भर वह वही धुन गाता रहा और उसकी बद-सूरती पिघलती गई। संगीत-घर के दरवाजे बन्द थे और लोगों के खटखटाने और शोर मचाने और रम्भा के चिल्लाने पर भी नहीं खुले। और जब रम्भा चली गई तो लोग खिड़की तोड़कर अन्दर घुस गए। ज़ैदी प्यानो पर अधमुआ पड़ा था। उसने ब्लेड से अपनी उँगलियाँ छील ली थीं और प्यानो के सफेद सुरों में अपने खून का रंग भरा था। उसने अपनी बदसूरती के अन्तरतम में रूप की महफिल सजाई थी और नफरत की अन्धी कोख में मुहब्बत के नरम भाव को जन्म दिया था। आज वह नव-प्रसूता की भाँति बेहोश पड़ा था। उसकी आँखें और उसके गाल और उसकी दाढ़ी आँसुओं से भीगी हुई थी।

कई दिनों बाद ज़ैदी को रम्भा का एक खत मिला।

"प्यारे ज़ैदी,

तुम निरे मूर्ख हो। मैंने तुममें दिलचस्पी दिखाई। तुमने जाने क्या समझा। यह तुम्हारी गलती थी। मैं एक ब्याहता औरत हूँ। मेरे दो बच्चे हैं। मैं अपने पति और बच्चों से प्यार करती हूँ। यह मूर्खतापूर्ण खयाल मेरे दिल में भी नहीं आ सकता। यह चाँदी का सिगरेट-केस

तुम्हें भेजती हूँ।"

जैदी ने खत फाड़कर जला दिया और चाँदी का सिगरेट-केस उठा कर कुएँ में फेंक दिया और फिर टहलते-टहलते म्यूज़िक-रूम की तरफ चला गया।

सौ रुपये

"मैंने सौ रुपयों का काम किया था। मुझे सौ रुपये मिलने चाहिएँ।"

सेठ ने कहा, "सोलह तारीख को आना।"

मैं सोलह तारीख को गया।

सेठ वहाँ नहीं था। उसका बुड्ढा मैनेजर जिसकी चुँदिया साफ़ थी और जिसका एक दाँत बाहर निकला हुआ था और जो अपने असि-स्टेन्ट को किसी गलती पर डाँट रहा था मुझ से बड़ी नरमी से कहने लगा, "तुमने सौ रुपयों का काम किया है तुमको बराबर सौ रुपये मिलेंगे, मगर आज सेठ यहाँ पर नहीं है कल आना।"

मैंने पूछा, "और अगर कल सेठ यहाँ पर न हुआ तो?"

मैनेजर बोला, "तो मैं इन्तजाम कर रखूँगा, तुम फ़िक्र न करो, तुम्हारा रुपया तुमको कल मिल जाएगा।"

मैंने दफ़्तर से बाहर निकलकर दो पैसे का पौना पत्ता, मफ़ीली मसाला और हरी पत्ती वाला पान खाया। दो पैसे में मैं देसी काला-काडी और ठंडक वाला पान भी खा सकता था और मलट्ठी, लाल मसाला वाला पान भी, और बनारसी छोटा पत्ता, गीली डली और इलायची वाला पान या मर्ज़ी तमाकू मगर मैंने पौना पत्ता मफ़ीली

मसाला और हरी पत्ती वाला पान ही खाया क्योंकि मुझे भूख बहुत लग रही थी और मेरी जेब में सिर्फ डेढ़ आना ही था और यह पान जो मैंने खाया बहुत काफ़ी मोटा होता है और देर तक मुँह में रहता है।

फिर मैंने एक आने का ट्राम का टिकट लिया और ट्राम में बैठकर मैंने जोर से सेठ की बिल्डिंग की तरफ थूक दिया।

दूसरे दिन फिर सेठ वहाँ नहीं था। उसके मैनेजर ने कहा, "सेठ आज भी यहाँ नहीं है और फिर तुम्हारे हिसाब में कुछ गलती भी है।"

मुझे गुस्सा आ गया। मैं हिसाब दे चुका था। मैनेजर दस बार उसे चेक कर चुका था। फिर भी गलती निकल आती है मैं कुछ समझ न सका। क्योंकि मैनेजर का लहज़ा बहुत नरम था और उसका हर वाक्य रेशम में लिपटा हुआ था।

मैंने कहा, "मेरा हिसाब तो बहुत साफ़ है।"

इतना कहकर मैंने अपनी खाकी पतलून की जेब से एक मैला पुर्जा निकाला और मैनेजर के साथ ग्यारहवीं दफा हिसाब चेक करने बैठ गया। इतने पैसे रेगमार करने के, इतने पैसे रोगन के, इतने पैसे मज-दूरी के, रेगमार और रोगन की रसीदें मेरे पास मौजूद थीं, मजदूरी पहले से तय हो चुकी थी, सेठ का फरनीचर मेरी मेहनत से जगमग-जगमग कर रहा था।

मैनेजर ने कहा, "हाँ, हिसाब ठीक है। अच्छा, कल आना।"

"मगर कल जरूर" मैंने जरा जोर देकर कहा।

"हाँ, कल जरूर" मैनेजर ने चुँदिया को सहलाते हुए कहा।

बाहर आकर मैंने दो पैसे का पान भी नहीं खाया। एक आने का ट्राम टिकट भी नहीं लिया और फिरोज़शाह मेहता रोड से सायन तक पैदल गया।

मगर दूसरे दिन फिर सेठ के दफ्तर गया।

आज भी दफ्तर में सेठ हाजिर नहीं था और मैनेजर भी गायब था। मैनेजर का असिस्टेन्ट अपनी चुँधियाई हुई आँखों से एक सिगल चाय

अपने सामने रखे कुछ सोच रहा था। उसका चेहरा बहुत पीला था, माथे के करीब, सफेद गालों के करीब और ठोडी के करीब मटमैला सा था। ऐसा मालूम होता था जैसे किसी ने उसकी चेहरे की हड्डियों के ऊपर की खाल के बदले मैले-मैले पीले-पीले कागज काट के मढ़ दिये हों।

मैं उसके चेहरे को ध्यान से देखता रहा।

असिस्टेन्ट ने प्याली से नजर उठाकर मेरी ओर देखा और हाथ के इशारे से मुझे कुर्सी पर बैठने को कहा।

मैंने पूछा, "सेठ कहाँ है ?"

वह बोला, "सेठ अपने दूसरे दफ्तर गया है।"

"और मैनेजर कहाँ है ?"

"मैनेजर सेठ के तीसरे दफ्तर गया है।"

"तो मुझे यहाँ चौथी मंजिल पर किस लिए बुलाया है ?" मैंने जरा गुस्से में तेज होते हुए कहा।

असिस्टेन्ट ने चाय का आखिरी कड़वा घूँट भी निगल लिया। आहिस्ता से बोला, "तुम यहाँ बैठ जाओ। मैनेजर अभी आता होगा, उससे बात कर लेना।"

मैं उस कुर्सी पर साढ़े दस बजे से लेकर पौने दो बजे तक बैठा रहा।

पहले मैंने सोचा कि एक शीशे का टुकड़ा लेकर इस सारे रोगन को उतार दूँ जो मैंने इतनी मेहनत से इस सारे फर्नीचर पर चढ़ाया था। फिर मैंने सोचा कि अपने दोनों हाथों से असिस्टेन्ट के चेहरे से पीले-पीले नकली कागजों को उतारता जाऊँ जब तक कि अन्दर की हड्डी नंगी न हो जाय। फिर मैंने सोचा मैनेजर को जान से मार देना अच्छा रहेगा। बहुत देर तक सेठ के लिए सजा सोचता रहा। आखिर ख्याल आया कि उसके सारे शरीर पर यों नम्बर की मोटी रेगमार फेरूँगा तो उसकी सारी खाल उधड़ कर नंगी हो जायगी।

फिर मैनेजर आ गया।

मुस्कराते हुए बोला, "तुम्हारा काम हो गया है। मगर चेक मिला है सौ रुपये का, और अब पौने दो बजने वाले हैं और दो बजे बैंक बन्द होता है और बैंक यहाँ से दो मील दूर है।"

"और कल छुट्टी है और परसों इतवार है" मैंने निराशा से कहा।

"हाँ" खुशी से हाथ मलते हुए बोला।

मैंने बेहद रुखाई से कहा, "चेक मुझे दे दो।"

पाँच मिनट और चेक लेने में गुजर गए क्योंकि चेक पर मेरा नाम गलत लिखा हुआ था। मुहम्मद शफी के बदले मुहम्मद रफ़ी लिखा हुआ था।

"च् च् च् च्" मैनेजर ने कहा, "बड़ी गलती हुई। मुहम्मद शफी लिखते-लिखते मुहम्मद रफी लिख गया मगर कोई हर्ज नहीं, अब तुम सोमवार को आकर नया चेक ले लेना।"

मैंने कहा, "यह तो बेयरर चेक है, नाम की गलती से कोई फरक नहीं पड़ता। तुम मेरे नाम की रसीद ले लो और चेक मुझे दे दो। सोमवार को मैं फिर क्यों आऊँगा, कहीं और धन्धा करूँगा।"

"अच्छा तो ले जाओ" मैनेजर ने रुकते रुकते कहा।

चेक लेकर बाहर आया तो दो बजने में पूरे नौ मिनट थे। किसी सूरत से पैदल चलकर मैं बैंक नहीं पहुँच सकता था। सौ रुपये का चेक मेरे हाथ में था मगर अभी कागज का पुर्जा था। इसे सौ रुपयों में बदलने के लिए बैंक तक पहुँचना जरूरी था दो बजे से पहले।

सिर्फ एक सूरत हो सकती है।

मैंने फैसला कर लिया। चिल्लाकर कहा, "ए, टैक्सी।"

पीली छत और स्याह शरीर वाली टैक्सी जूम से मेरे पास आकर रुक गई। मैंने अन्दर बैठते ही कहा, "कालबा देवी रोड के नाके पर चलो और ज़रा तेज़ चलो।"

जब कालबा देवी रोड के नाके पर पहुँचे तो दो बजने में दो मिनट

थे, मगर बैंक कालया देवी रोड के नाके पर नहीं था किन्तु चेक पर नहीं लिखा था, बैंक कहीं नजर नहीं आया. दो-एक दूकानदारों से पूछा, किसी को फुर्सत नहीं थी, कोरिया में जंग तेज थी, भाव भी तेज जा रहे किसको वार्निश करने वाले के सौ रुपयों की फिक्र थी।

हार कर एक पंजाबी सिक्ख हारमोनियम बनाने वाले की दूकान में घुस गया।

"आइए-आइए, कैसा बाजा चाहिए आपको" सरदार ने अपनी आरी को छोड़कर, जिससे लकड़ी काट रहा था, मुझ से मुस्कराकर कहा।

मैंने कहा, "सरदार जी मुझे बाजा नहीं चाहिए। ओल्ड मर्केन्टाइल बैंक का पता चाहिए! चेक पर लिखा है कालया देवी रोड और यहाँ कहीं मिलता नहीं।

सरदार जी ने मुस्करा कर कहा, "बादशाहो, वह बैंक तो साथ वाली गली में है। उधर से घूमकर सोनार बाज़ार के उस तरफ, पुराने चाँदी वाले मन्दिर के पास।"

मैंने सरदार जी का शुक्रिया भी नहीं किया। भागा हुआ टैक्सी के पास गया।

जब बैंक में पहुँचा तो दो बजकर चार मिनट थे। नियम के हिसाब से मेरा चेक क्लर्क को नहीं लेना चाहिए था। मगर मालूम होता है वह चेक पढ़ने के अतिरिक्त चेहरे पढ़ने भी जानता था। उसने बिना बात चेक मुझसे लिया, फिर उलटा कर देखा और मुझसे कहने लगा इस पर दस्तखत तो कर दो।"

मेरा नाम मुहम्मद शफी था लेकिन मैंने मुहम्मद रफी लिखा। यह मुहम्मद रफी कौन था, कहाँ से आया था, कब पैदा हुआ, उसकी सूरत कैसी थी, उसके माँ-बाप कौन थे, कौन जानता है। कुछ जिन्दगियाँ ऐसी होती हैं, जो चेक पर लिखी जाती हैं और बैंक पर ही काट दी जाती हैं।

मैं टैक्सी वाले का चुकता करने लगा, दो रुपये दो आने, टैक्सी छोटी थी, इसलिए मीटर बढ़ा नहीं। अगर टैक्सी बड़ी होती तो पाँच-सात रुपये खुल जाते। मैंने खुशी से शान्ति का साँस लिया। इतने में किसी ने मेरे कन्धे पर जोर से हाथ मारा और कहा, कहो दोस्त, मेरे यार, बड़े टैक्सियों में घूम रहे हो?"

मैंने घूमकर देखा मेरा दोस्त इसहाक था। इसहाक बड़े खुले दिल का आदमी है। वह खुद तो अब्दुर्रहमान स्ट्रीट के अन्दर एक खोजे के मकान में एक तंग-से कमरे में रहता है और वही धन्धा करता है जो मैं करता हूँ यानी वारनिश का और पुराने फरनीचर को फिर से नया कर देने का। लेकिन उसकी प्रेमिका मुहम्मद अली रोड और क्राफर्ड मार्केट के नुक्कड़ पर एक अच्छे होटल में रहती है। मैंने देखा है बड़ी खूब-सूरत औरत है और बड़े-बड़े सेठों के पास जाती है। यह इसहाक पहले उसके पास ड्राइवर था मगर इसहाक को यह काम पसन्द नहीं आया और वह उससे अलग हो गया। वह औरत उसको बहुत पसन्द करती है। यह भी उसको चाहता है। मगर वह उसको अपनी जिन्दगी के से ढर्रे पर लाना चाहती है और यह उसको अपने तरीके पर रखना चाहता है। दोनों में हमेशा लड़ाई होती है। फिर यह उससे दस-बारह रोज़ नहीं मिलता। फिर वह इससे मिलने आती है। ऐसे ही यह चक्कर चलता रहता है। कभी-कभी इसहाक जब कोई मोटी रकम कमा लेता है तो उसे जाकर दे आता है और उसे एक लेक्चर भी झाड़ आता है। मगर जिस औरत के पास अच्छा होटल होगा अच्छी जवानी, सेहत और खूबसूरती होगी और सोने चाँदी वाले सेठ होंगे वह वानिश करने वाले इसहाक की बात क्यों सुनेगी। सोचने की बात है यारो।

मैंने इसहाक से पूछा, "मुझे भूख लगी है, कुछ खाओगे?"

वह बोला, "हाँ, भूखा तो मैं भी हूँ। चलो फिरोज कबाबी की दूकान पर।"

फिरोज कबाबी की दूकान में छुट्टी करके इसहाक ने मुझसे दस

रुपये उधार लिये और अपने रास्ते पर चला गया। मुझे इसहाक बहुत पसन्द है। उसके पास पैसे हों तो किसी को ना नहीं करेगा, सबको खिलाएगा पिलाएगा और जब पैसे नहीं होंगे तो मेरे सिवाय और किसी से कर्ज नहीं माँगेगा। भूखा मर जायगा मगर किसी से उधार नहीं लेगा। ऐसा दोस्त जो दुनिया में तुम्हारे सिवा किसी से उधार न ले कहाँ मिलता है। मुझे इसहाक की दोस्ती पर बड़ा गर्व है। मैं जब भी इसहाक से मिलता हूँ एक अजीब-सी खुशी अनुभव करता हूँ। मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे दुनिया में कोई दुःख नहीं है, कोई तकलीफ नहीं है, जैसे सारी दुनिया खिलौनों से भरी पड़ी है और इसके सारे बाजार मेरे लिए सजे पड़े हैं। कई आदमियों में कुछ ऐसी ही बात होती है।

इस वक्त इसहाक से मिलकर मेरा जी हलका फुलका हो गया। मैंने क्राफर्ड मार्केट से दो सेब खरीदकर खाए। एक भिखारी को दो आने दिये। वहाँ से चलता-चलता बोरी बन्दर आ गया लेकिन जेब में रुपये थे और अभी सायन घर जाने को जी नहीं चाहता था इसलिए मैं बोरी बन्दर से हार्नबी रोड पर हो लिया।

हार्नबी रोड की दूकानें मुझे बहुत पसन्द हैं। खास तौर पर उन दूकानों की प्रदर्शनी-खिड़कियाँ जिनमें शीशे लगे हुए हैं और नियोन की रोशनियाँ और आदम कद काँच के बड़ी बड़ी साफ सिलों के पीछे खूब-सूरत चीज़ें पड़ी हुई हैं। खूबसूरत टाइयाँ, मोज़े, जुराब, पतलून के कपड़े, मफलर, जूते, हर हफ्ते इन खिड़कियों की खूबसूरत चीज़ें बदल जाती हैं और पुराने डिजाइन के बदले नये डिजाइन आ जाते हैं। शाम को घर जाने से पहले मैं अक्सर हार्नबी रोड की प्रदर्शनी-खिड़-कियाँ देखा करता हूँ। जेब में पैसे हों या न हों इससे कोई मतलब नहीं। लेकिन मैं अक्सर अपना काम खतम करके बोरी बन्दर जाने के लिए हार्नबी रोड से गुजरता हूँ और एक-एक खिड़की से नाक रगड़कर अन्दर की खूबसूरत चीज़ें देखा करता हूँ। इससे मुझे इतनी ही प्रसन्नता

मिलती है जितनी बचपन में नये खिलौने देखकर मिला करती थी।

और आज मेरी जेब में पैसे थे।

मैंने अपनी जेब में हाथ डालकर नये-नये करकरे नोटों को थपथपाया और बड़ी शान से इवान एंड फ्रेजर की प्रदर्शनी-खिड़कियों के सामने जा खड़ा हुआ।

कितनी खूबसूरत कमीज थी?

बादामी रंग की साफ और नई कमीज पर ब्लू और लाल रंग की धारियां। मेरा तो जी मचल गया। मैंने अपनी कमीज के फटे हुए कालर को सहलाया। इन ब्लू और लाल रंग की धारीदार कमीज पहनकर मैं क्या दिखाई दूंगा? मैंने कल्पना में अपने-आपको यह कमीज पहनकर एक बड़े शीशे के सामने देखा, वाह, क्या ठाठ थे और कमीज के दाम थे सिर्फ तीस रुपये। और इससे तिगुने रुपये इस वक्त मेरी जेब में थे। मैं कमीज खरीद सकता था। मगर कुछ और अच्छा देखने के लिए आगे चला गया।

अगली खिड़की में खूबसूरत साबुन थे, झाग वाले स्पंज, और तौलिए जिन्हें देखकर नहाने की इच्छा पैदा होती थी। ये सब मैं खरीद सकता था। इससे अगली खिड़की में मर्दों के लिए रात को पहनने वाले गाउन थे, भड़कीले रेशमी कढ़े हुए गाउन, जिन्हें पहन कर वारनिश वाला भी मिसर का पाशा मालूम हो। सत्तर रुपये का गाउन। इससे ज्यादा रकम मेरे पास थी। मैंने इस गाउन को अपनी कल्पना में पहना और एक ईरानी गलीचे पर उड़ता हुआ बहुत दूर चला गया। हवा साफ थी। मेरे नीचे खूबसूरत बागों वाली जमीन घूम रही थी और हरी हरी दूब में एक इकहरी नाजुक नदी लेटी हुई थी। मैंने गलीचे को उसके किनारे उतरने का हुक्म दिया। गलीचा नदी के किनारे उतर आया और खुद ही बिछ गया और खुद ही कहीं से एक सुराही आ गई और एक संगमरमर का हाथ और दो आँखें और एक सुन्दर चेहरा और फिर किसी ने मुझे टोका दिया और सख्त आवाज में कहा, "आगे

चढ़ो, किसी और को भी देखने दो। आधे घण्टे से यहाँ खड़ा है, न लेना न देना।"

मैंने मुस्कराकर ईवान एण्ड फ्रेजर के यहाँ पोश गुलाम को देखा और आगे चला गया। बिचारे को क्या मालूम था कि मेरे पास एक हवा में उड़ने वाला ईरानी गलीचा है और जेब में सत्तर रुपये से भी ज्यादा की रकम है। मैं इसी वक्त अन्दर जाकर इस गाउन को खरीद सकता मगर मेरा जी नहीं माना। हार्नबी रोड पर इससे अच्छी भी कोई चीज होगी। आगे चलकर देखा जाय। इस ज़रीपोश गुलाम को तो किसी वक्त भी खरीदा जा सकता है।

आगे चलता-चलता बहुत सी दूकानें देखता-भालता मैं जग[illegible] लाल पाटिल की दूकान पर पहुँच गया। यहाँ प्रदर्शनी-खिड़की में कैमरे पड़े थे। कैमरा खरीदने का मुझे कई दिनों से शौक था। आज यहाँ कितने ही कैमरे पड़े थे जिन्हें मैं खरीद सकता था। कैमरा खरीदकर मैं उन तमाम फर्नीचरों की तस्वीरें ले सकता था जो पुराने हैं लेकिन जिन्हें मेरा वारनिश और मेरी मेहनत इतना खूबसूरत बना देती थी कि वे बिल्कुल नये फर्नीचरों की तरह जगमगाने लगते थे। कैमरा लेकर मैं इसहाक के पास जाऊँगा और उससे कहूँगा, चल आज तेरी और तेरी प्रेमिका की इकट्ठी तसवीरें लेंगे। मैंने अपना ईरानी गलीचा मंग-वाया और कैमरा हाथ में लेकर सारी दुनिया के खूबसूरत दृश्यों की तस-वीरें उतारने लगा।

कैमरे के साथ-साथ एक जादू बीन पड़ी थी जिसमें देखने से तसवीरें बिल्कुल अपनी पूरी गहराई के साथ दिखाई देती हैं मानो वे आदमी बिल्कुल आपके सामने चल-फिर रहे हों और मकान बिल्कुल आपके सामने हू-ब-हू जैसे आपका घर। तसवीरें अपनी लम्बाई-चौड़ाई, गोलाई के साथ इतनी अच्छी दिखाई देती हैं कि सिनेमा में भी इतनी अच्छी मालूम नहीं होतीं। बचपन में एक बुढ़िया ऐसी ही जादू बीन हमारे मुहल्ले में लाया करती थी और हम लोग एक पैसा दो पैसे देकर तमाशा

देखते थे।

इस जादूबीन को देखकर मेरा दिल खुशी से काँपने लगा और मैं दूकान के अन्दर घुस गया। काउन्टर पर मैंने एक नौजवान से पूछा "यह जादूबीन कितने की है?"

"साढ़े तीस रुपये की।"

नौजवान बड़ी खूबसूरत कमीज़ पहने था, उसके बाल घुँघराले और पीछे घूमे हुए थे, नियन की रोशनी में नये फर्नीचर की तरह चमकते थे। उसके होठों पर जवानी का वारनिश था और उसके मुँह पर एक दर्द-भरी मुस्कराहट थी जो सिर्फ चेक लिखते वक्त पैदा होती है। उसने मेरी तरफ से आँख हटाकर एक खूबसूरत लड़की की तरफ देखा जो अभी-अभी दूकान में मेरे पीछे घुसी थी और उसकी तरफ ध्यान देने लगा। और एक मैले-मैले चेहरे वाला फटेहाल गुजराती जो शायद उसका असिस्टेन्ट था मेरी तरफ आया। उसके चेहरे का वारनिश जगह-जगह से उखड़ा हुआ था। उसने मुस्काने की भी कोशिश नहीं की।

मैंने कहा, "यह जादूबीन मुझे दिखाओ।"

उसने जादूबीन में एक गोल गत्ता रखकर मेरे हाथ में थमा दिया और मुझसे कहा, "इसे घुमाते जाओ, यूँ स्विच दबा कर, नयी-नयी तसवीरें तुम्हारे सामने आती जायँगी।"

मैंने बटन दबाया, टार्जन हाथी पर सवार सामने से आ रहा था।

मैंने बटन दबाया, टार्जन जल-प्रपात में छलांग लगा रहा था। नीचे मगरमच्छ कितने भयंकर मालूम हो रहे थे।

मैंने बटन दबाया, फूलों के गजरे, फूलों के लहंगे पहने हवाई द्वीप की लड़कियाँ नाच रही थीं।

मैंने बटन दबाया, किनारे की रेत पर शराब और फल और बिस्कुट और खाने की चीजें एक साफ तश्तरी में पड़ी थीं और एक औरत रेत पर आँखें बन्द किये लेटी थी और उसकी छातियाँ मेरे इतनी निकट थीं कि मैंने जल्दी से बटन दबा दिया।

ईरानी गलीचा जमीन पर आ गया।

मैंने गुजराती खाज के मारे क्लर्क से कहा, "यह जादू बीन तो बहुत अच्छी है, मेरे बचपन की जादू बीन से हजारगुना अच्छी, कितने मे दोगे ?"

वह मुस्कराए बिना बोला, "साढ़े पैंतीस रुपये की जादू बीन आती है। ये दो रंगीन तसवीरों वाले पलीते एक दर्जन इसके साथ लेने पड़ेंगे, दस रुपये के ये होंगे। सेल टैक्स इससे अलग। पचास रुपये के ऊपर रकम जायगी।"

मैंने जेब में हाथ डालकर दस-दस के नये करकरे नोटों को थपथपाया, आपको विश्वास नहीं आएगा, यह बिलकुल सच है कि इसमें पहले मेरे दिल में जादू बीन के सिवाय और कोई तसवीर न थी लेकिन नोटों को हाथ लगाने से जैसे एकदम मुझे धचका-सा लगा और बहुत सी तसवीरें बटन दबाये बिना ही मेरे सामने घूम गईं।

एक बच्चा फटी हुई कमीज़ पहने गली के फर्श पर बैठा है और रो रहा है।

एक औरत की सलवार का पायचा दूसरे पायचे से ऊँचा है। उसकी फटी हुई ओढ़नी मे उसके सिर के उलझे हुए बाल बाहर निकले हुए नज़र आ रहे हैं।

एक आदमी दरवाज़े में खड़ा है।

उसकी सूरत हर पल बदलती जाती है। उसका गुस्सा हर क्षण बढ़ता जाता है।

कभी यह मालिक मकान का मैनेजर होता है।

कभी दूध वाले सेठ का नौकर।

कभी बिजली वाली कम्पनी का ओहदेदार।

कभी पानी वाले दफ्तर का कारिन्दा।

मैंने बटन दबा दिया।

अब मेरे सामने घर के फर्श पर एक खाली तश्तरी पड़ी थी जिसमें

एक गिलास औंधा पड़ा हुआ है।

नोट मेरी जेब से बाहर नहीं निकले। वहीं हाथ ही में रह गए।

खूबसूरत क्लर्क खूबसूरत लड़की को कैमरा बेचकर वापस काउन्टर पर आ गया। मैं जल्दी से घूमकर दूकान से बाहर जाने लगा। बाहर जाते-जाते मैं जानता था कि वह क्लर्क अपनी सब से अच्छी वारनिश-पुती मुस्कराहट से मेरे फटे हुए कालर देख रहा है, मेरी खाकी जीन की पतलून देख रहा है, जिसकी बैक पर दो जगह टुकड़े सिले हुए हैं, मुझे मालूम था कि वह मुझ पर हँस रहा है।

मैंने अच्छी तरह से अपने दाँत पीस लिए। अच्छी तरह से जेबों में हाथ डालकर नोटों को अपनी पकड़ में ले लिया। और प्रदर्शनी-खिड़कियों से नजर हटाकर सीधा बोरी बन्दर की तरफ चलने लगा।

चलते-चलते मुझे अनुभव हुआ जैसे मुझसे किसी ने बड़ा धोखा दिया है, किसी ने मुझे सौ रुपये देकर दो सौ रुपये छीन लिए हैं। इसके साथ ही मेरा ईरानी गलीचा और जादू बीन भी छीन ली है। किसी ने जोर से मेरे मुँह पर चपत मारी है। किसी ने मेरे नोट पर लिख दिया है, तुम्हारे लिए नहीं, तुम्हारे लिए नहीं। मेरे कदम हर पल भारी होते गए और मैंने अनुभव किया कि मेरी मेहनत का हर नोट उदासी की एक लम्बी ज़ंजीर है जिसे मैं खुद अपने हाथों से खींच रहा हूँ।

बोरी बन्दर पहुँचकर मैंने फैसला किया कि आज मैं गाड़ी से अपने घर वापस नहीं जा सकता। आज मैं पैदल बोरी बन्दर से सायन जाऊँगा।

बहुत रात गए मैं थका-माँदा अपने घर लौटा, मेरी बीवी परेशान थी और मेरा इन्तजार कर रही थी। लेकिन जब उसने नोट देखे तो खुश हो गई इसलिए वह मेरी उदासी का मतलब न समझ सकी।

बोली, "लेकिन यह क्या बात है तुम आज खुश होने के बदले उदास हो?"

मैंने चारपाई पर बैठते हुए कहा, "मेरी जान, आज मुझे पता चला है कि यह दुनिया बहुत बूढ़ी हो चुकी है और मुझे ऐसी दुनिया चाहिए जो बच्चों की तरह मुस्करा सके।

वह बोली, "मैं नहीं समझ सकी कि तुम क्या कह रहे हो ?"

मैंने कहा, "मैं कह रहा हूँ कि अब पुराने फर्नीचर पर वारनिश करने से काम नहीं चलेगा। अब नया फर्नीचर लाना होगा।"

अंजीर

स्यानते बहुत पुराना स्पेनी गाँव था और एक ऊँचे टीले पर आबाद था। टीले के नीचे से नदी गुजरती थी लेकिन इस वक्त वह बिलकुल सूखी थी। उसकी तह में भूरी-भूरी मिट्टी के काले-काले पत्थर चमक रहे थे। पत्थर जो कभी नीले, सटियाले या सुबह के रंग के होंगे मगर इस वक्त बिलकुल काले थे। एक आवारा गदहा घास की तलाश में इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा था। सूरज की गर्मी से जमीन हाँफ रही थी। पुरानी इस्लामी मसजिद के पास अनघड़ पत्थरों का एक घर था। इसमें पेद्रो सोया हुआ था। पेद्रो और उसकी बीवी जो जवानी में अधेड़ उम्र की दिखाई देती थी, उनके नख-शिख में अफ्रीका से आये मूरों का असर दिखता था। पेद्रो का रंग भी किसी जमाने में तांबे का-सा होगा, इस वक्त सुरमई-सा था। उसके माथे की रेखाओं में और गालों के गड्ढों में और ठोडी के चीर में पसीने की बूंदें चमक रही थीं।

"रिफका रिफक' अरी ओ रिफका"

लेकिन रिफका खुद सोना चाहती थी। वह कच्चे फर्श पर औंधे मुँह पड़ी थी। उसकी मोटी-मोटी टांगें नंगी थीं और उन पर नीली-नीली नसें उभरी हुई थीं। घुटने और पावों पर मट्टी की तहें जमी हुई थीं और नाखून घोड़े के नाखूनों की तरह मोटे थे और पाँव चपटे-चपटे,

छोटे-छोटे से पाव, लेकिन चपटे—रिफका के उलझे हुए बालों में जैसे कभी कंघी न हुई थी। वह दाहिने हाथ में बराबर पंखा किए जाती थी।

रिफका ने अपने मर्द की आवाज सुनी मगर वह चुप रही और बराबर अपने चेहरे के ऊपर कागज़ का पंखा हिलाती रही।

"अरी ओ रिफका, छिनाल कहीं की, हरामजादी, सुनती है कि नहीं, पंखा मुझे दे, गर्मी से मरा जा रहा हूँ।"

रिफका ने सुनी अनसुनी कर दी और बराबर अपने चेहरे पर पंखा हिलाती रही। उसका चेहरा किसी ज़माने में बहुत सुन्दर होगा लेकिन अब उसके गाल पीले पड गये थे, उसकी खूबसूरत बडी-बडी आंखों के नीचे गड्ढे थे और माथे का चमडा धुंधला गया था और उसके हाथों और पैरों की जिल्द कमाये हुए चमड़े की तरह दिखाई दे रही थी और उसकी लम्बी पलकों की लाइन वैसे ही फैली हुई थी। उसने अधखुली आँखों से अपने मर्द की तरफ देखा और करवट बदल कर पंखा हिलाती रही।

"तुझे फाको के गुंडे उठाकर ले जायँ" पैड्रो ने उसे यह मोटी गाली दी और ज़मीन से उठ कर खड़ा हो गया, बोला, "मैं तो ज़मींदार के बगीचे में जाता हूँ सोने के लिए।"

वह छोटे से दरवाजे से सिर झुका कर निकला। बाहर धूप बहुत तेज थी। वह जल्दी-जल्दी कदम उठाता हुआ ज़मींदार के बाग की तरफ चला गया।

ज़मींदार के बगीचे के चारों तरफ पत्थरों की दीवार थी, कोई तीन फुट ऊँची। अन्दर बगीचे में कोई फूल-फल-पत्ती कुछ भी न था, सिर्फ अंजीर के पेडों का एक झुंड खडा रह गया था। लोकराज के लिए विद्रोह के दिनों में ज़मींदार का घर लूटा गया था, उसकी छत तक उखाड कर फेंक डाली गई थी, बगीचे के ठीक ऊपर ज़मींदार का मकान इसी हालत में खड़ा था, जगह-जगह से जला हुआ, टूटा हुआ, लूटा

हुआ, छत गुम। जमींदार ने अपने पुश्तैनी मकान की मरम्मत की तरफ कोई ध्यान न दिया था, वह साल मे दो बार गांव आता था और गाँव के रहने वालों से अपना रुपया वसूल करके फिर वापस मैड्रिड चला जाता था। मैड्रिड का राग रंग हमेशा उसे अपने पास बुलाए रहता था। गाँव का भयानक एकान्त, गाँव के रहने वालों की बोला-बोली, गांव के टूटे-फुटे जीवन का प्रभाव उसे गाँव में कुछ दिनों से अधिक न ठहरने देता था। उसके बाग मे एक बूढ़ा चौकीदार रहता था, वह बहुत बुड्ढा था और बहुत गरीब था, इसलिए उसे स्पेनी गृहयुद्ध मे किसी ने मारा नही। इस वक्त वह जमींदार के मकान के तहखाने मे सो रहा था।

बगीचे के टूटे हुए फाटक ने आवाज की, लेकिन पेड्रो ने इसकी टीं-पीं चूं-चूं की परवाह न की और दर्राता हुआ सीधा अन्दर चला गया। पगडडिया टूटी पडी थीं। एक नंगी औरत का बुत फव्वारों के पास टूटा पडा था। फव्वारों में पानी न था और फर्श जगह-जगह से उखड़ा हुआ था। पेड्रो सीधा अन्दर चला गया अंजीरों के झुण्ड की तरफ। यहा घनी छाया तो न थी लेकिन फिर भी कुछ आनन्द तो देती ही थी और हवा अजीर के छोटे-छोटे पत्तों मे हौले-हौले चल रही थी। पेड्रो ने इस हवा की जीवन देने वाली ठढक को अपने गालों पर अनुभव किया और उसे मालूम हुआ जैसे रिफका उसे पंखा झल रही हो। उसे बहुत जल्द नींद आ गई और वह खर्राटे लेने लगा। उसका मुँह खुल गया और लार उसके होंठों के कोनों से गिरकर जमीन को गीला करती गई।

तीन सिपाही रायफलें थामे बगीचे में घुसे। उन्होंने पी रखी थी। वे बहुत मस्त थे और बडे जरूरी काम से आए थे। उन्होंने पहले अंजीर के झुंड में छरहरी छाया में थोड़ी-सी और पी और ऊंची आवाज से जोर-जोर से गाने लगे। गीत वहशी और निकम्मा था। इसमे फ्रांको की तारीफ थी, अपनी फौज की बहादुरी की कहानी थी और लोकराज के लीडरों के लिए कोसने थे। वे बडे मजे में देर तक गाते रहे और

पीते रहे। फिर उन्होंने रायफल के कुन्दे से सोये हुए पेड्रो को दो-तीन चोटें टिकाईं। पेड्रो हड़बड़ा कर उठ बैठा।

"क्या है, क्या है," पेड्रो परेशान होकर बोला।

वे गाने लगे, बोले, "इस गाने में तुम्हें भी हिस्सा लेना चाहिए।"

पेड्रो पल-भर के लिए रुका, सिपाही बोले, "गाते हो कि नहीं?"

"गाऊँगा।"

"तो चुप क्यों हो? गाओ।"

"मुझे यह गीत नहीं आता है। तुम गाओ मैं तुम्हारे साथ-साथ गाऊँगा।"

"नहीं तुम खुद गाओ। गीत तुम्हें याद क्यों नहीं है? क्या तुम कम्यूनिस्ट हो?"

पेड्रो बोला, "मेरा नाम पेड्रो है। मैं एक गरीब किसान-मजदूर हूँ। मेरे सात बेटे लड़ाई में काम आए। तीन लड़के लोकराज स्पेनी सेना में भरती हुए। बड़ा बेटा और उससे छोटा बेटा और उससे छोटा बेटा और फिर सबसे छोटा बेटा जो मुझे बहुत प्यारा था, ये चार बेटे, फ्रांको के सिपाही बन गए, तुम्हारी तरह। इस तरह लड़ाई में मेरे बेटे काम आए। अब मेरे पास एक ही बेटा है। वह अभी बच्चा है। सत्रह बरस का होगा। मेरा नन्हा पीट्र।"

पहले सिपाही ने कहा, "नहीं तुम कम्यूनिस्ट हो।"

पेड्रो ने कहा, "मैं कम्यूनिस्ट नहीं हूँ तुम गलत कह रहे हो।"

"कौन गलत कहता है? तुम या हम, जल्दी बोलो।" एक सिपाही ने उसे कुन्दा मारकर कहा।

दूसरा बोला, "हरामजादा, कम्यूनिस्ट है। इस मास्को पहुँचा दो।"

तीसरा हँस के बोला, "मास्को जाओगे? वहाँ खाने को सब-कुछ मिलेगा। पहनने के लिए कपड़ा भी मिलेगा और काम भी मिलेगा।"

पेड्रो बोला, "अब तो मैं जरूर जाऊँगा···" उसे गुस्सा आने लगा।

तीसरे सिपाही ने दूसरे सिपाही से हँसकर कहा, "यह जरूर जाएगा, इसे जल्दी से भेजो।" इतना कहकर वे ठट्टा मारकर हँस पड़े।

पहले सिपाही ने रोब से कहा, "तो खड़े हो जाओ।"

"काहे को ?" पेड्रो बोला।

"तुम्हें मास्को जाना है न ? इसलिए कोई बहाना न करो। फौरन उठकर खड़े हो जाओ।"

पेड्रो अचरज और परेशानी से उनकी तरफ देखता हुआ उठ खड़ा हुआ। दूसरे सिपाही ने उसे इशारा करते हुए कहा, "इस बगीचे की दीवार के उस तरफ मास्को है और इधर स्पेन है, तुम मास्को जाना चाहते हो न, इसलिए इस गेट से नहीं इस दीवार को फलांग कर चले जाओ।"

पेड्रो बोला, "तुम हँसी कर रहे हो।"

दूसरे सिपाही ने रायफल उठाकर कहा, "जाते हो या फिर कोई दूसरा उपाय बताएँ ?"

पेड्रो वहां से भाग खड़ा हुआ। वह दीवार फलाँग ही रहा था कि तीसरे सिपाही ने उसे गोली का निशाना बनाया और वह मछली की तरह तड़पकर दीवार के उधर जा गिरा और फिर नहीं उठा। गोली की आवाज देर तक टीले के चारों ओर गूँजती रही।

गोली की आवाज़ सुनकर बाग का बुड्ढा माली जाग गया। भागता हुआ आया, अँजीर के झुंड की छाया में तीन सिपाही जोर-जोर से कहकहे लगा रहे थे।

"क्या हुआ ?" बुड्ढा माली बोला।

तीसरे सिपाही ने कहा, "दादा, एक कम्यूनिस्ट था, उसे मास्को पहुँचा दिया है हमने।"

बुड्ढे ने कहा, "यह तो पेड्रो की लाश है।" उसके हाथ-पाँव काँपने लगे।

दूसरा सिपाही बोला, "इसका घर कहाँ है ? जरा वहाँ भी खबर

कर दें।"

बुड्ढे ने रुँधे हुए गले से कहा, "यह तो पेड्रो की लाश है। पेड्रो जिसके सात बेटे सिविल वार से काम आए, जिसका आठवाँ बेटा आवारा है और दिन-भर लौंडियों के पीछे घूमता रहता है।"

"आठवें बेटे की उम्र क्या होगी?" पहले सिपाही ने पूछा।

"यही कोई सत्रह अठारह साल," बुड्ढे माली ने लाश की तरफ देखकर अपने शरीर पर क्रास का निशान बनाते हुए कहा। "यह पेड्रो की लाश है। रोज़ दुपहर को यहाँ अँजीर के झुंड में सोने के लिए आता था। अब कभी नहीं आयगा। अच्छा, मैं रिफका को खबर कर दूँ।"

वह अफसोस से सिर हिलाने लगा।

"रिफका कौन है?" पहला सिपाही बोला।

"उसकी बीवी है।"

पहले सिपाही ने मीनिंगफुल निगाहों से बाकी दो सिपाहियों की तरफ देखा। फिर कहने लगा, "नहीं, तुम मत जाओ। हम खुद खबर कर देंगे। कहाँ है घर उसका?"

बुड्ढा चुप रहा।

तीसरे सिपाही ने रायफल सीधी की, बोला, "बताते हो कि—"

बुड्ढे ने काँपते-काँपते कहा, "वह सामने टीले पर उसका घर है।"

× × ×

पींटू साथ वाले गाँव में अपनी प्रेमिका से मिलने गया था। मारिया उसकी प्रेमिका थी। वह बहुत-सी लड़कियों को जानता था क्योंकि वह बहुत सुन्दर था और वह नाचता बहुत अच्छा था। इसलिए आसपास की बहुत-सी लड़कियाँ उसे चाहती थीं मगर पींटू को मारिया बहुत पसन्द थी। खुद मारिया भी बहुत सुन्दर थी और बहुत अच्छा नाचती और गाती थी। इस समय मारिया और पींटू गिरजाघर के पुराने बाग में अंगूर की बेलों के बीच छिपे बैठे थे और ऊँचे ऊँचे अंगूरों के गुच्छे तोड़-तोड़कर खा रहे थे और एक मज़बूत लेकिन लचकती हुई डाल पर

बैठे हुए आहिस्ता-आहिस्ता झूल रहे थे। पींट्र का हाथ मारिया की कमर में था और मारिया की आँखें खुशी से चमक रही थीं। उसके उलझे हुए भूरे बालों में साफ तरह की अदा थी और उसकी बेदाग अंजीर जैसी कान्ति में सोना घुला हुआ था। गालों पर ऊपर के होंठ के पास एक छोटा सा भूरे रंग का तिल था जो मुस्कराते वक्त बहुत अच्छा मालूम होता था। एकाएक मारिया पींट्र की तरफ देखकर मुस्कराई और पींट्र ने झुककर उस तिल को चूम लिया और अंगूर की बेल लचक-लचक गई।

मारिया ने कहा, "बेल पेड़ से निकल जायगी और हम लोग नीचे जा गिरेंगे और अगर गिरजाघर के पादरी ने मुझे देख लिया तो शामत आ जायगी।"

"वह क्यों ?"

"मुझे बुरी तरह घूरता रहता है। गिरजे में, गिरजे के बाहर कहीं मिल जाय, किसी सहेली के घर, उसकी नजरें हर वक्त मुझपर गड़ी रहती हैं।"

"तुम्हें चाहता होगा न ! कम्बख्त जान से जायगा।"

मारिया ने खुश होकर पींट्र की ओर देखा और अंगूर का एक दाना अपने होंठों में दबा लिया और पींट्र की ओर देखकर बोली, "मूम्"

इस वक्त उसकी आँखें खुशी और शरारत के तारों की तरह चमक रही थीं और जब उसने पींट्र के होंठ अपने होंठों से मिलते हुए अनुभव किए तो उसकी आँखें झपककर बन्द हो गईं और वह अंगूर का दाना इस चुम्बन की मिठास में घुलकर रह गया और इसके रस को दोनों ने चखा और किसी को याद न रहा कि वह अंगूर का रस है या होंठों का परस या दिलों का मेल। एक मधुर नरम हौला रस था जो आहिस्ता-आहिस्ता रूहों में उतरता जा रहा था।

पींट्र ने कहा, "जब हमारी शादी हो जायगी तो हम मुर्गियां पालेंगे। मुझे नन्हें-नन्हें चूज़े बहुत पसन्द हैं।"

मारिया ने कहा, "और मैं घर के आंगन में नरम नरम ककड़ियाँ उगाऊँगी और मेरे सात बच्चे होंगे।"

पींट्र बोला, "सात तो कम होंगे। देखो, हम आठ भाई थे, अब अकेला मैं बाकी रहा, कम-से-कम ग्यारह बच्चे तो होने चाहिएँ जिससे जंगों में मरते-मरते भी दो-तीन बच जायें।"

मारिया ने मजबूती से सिर हिलाकर कहा, "नहीं सात बच्चे काफी हैं और हमें जंग से क्या लेना। मैं तो अपने किसी बच्चे को जंग में नहीं भेजूँगी। जब वे भरती के लिए आएँगे तो हम लोग इन टीलों के पीछे झाड़ियों में छिप जाएँगे। मैं तो बस अपना छोटा-सा घर चाहती हूँ और अपने बच्चे और तुम्हें।'

पींट्र ने कहा, "और मेरे मुर्गी के नन्हे-नन्हे चूजे और घर के पास ही वह खेत और यह नीला आसमान। सच कहता हूँ स्पेन का आसमान बड़ा सुन्दर है। खुला नंगा और विशाल। मैं सच कहता हूँ ऐसा आसमान तो और कहीं नहीं होगा।"

मारिया ने निश्चयपूर्वक कहा, "हाँ, हमारे स्पेन-जैसा खूबसूरत आसमान दुनिया में कहीं नहीं है।"

वे देर तक चुप बैठे रहे और कल्पना के पानी में अपने सपनों की सुन्दर नावें तैराते रहे। दो सुन्दर नावें जो कभी इधर-उधर तैरती फिरती थीं। वे प्यारी-प्यारी नावें जो साथ-साथ तैर रही थीं। पानी के हलकोरों पर नाचती-सी मालूम होती थीं और पानी चारों ओर से नीला था और बीच में जहां किश्तियां तैर रही थीं सुनहरा था। दूर क्षितिज पर धुंध छाई हुई थी और फिर किश्तियां हौले-हौले क्षितिज की ओर चल दीं और धीरे-धीरे छोटी छोटी-सी होती गयीं, फिर बिन्दु से रह गये और फिर वे धुन्ध में खो गयीं।

एकाएक मारिया को जैसे होश आ गया, घबराकर बोली, "बहुत देर हो गई, अब मैं घर जाती हूँ।"

पींट्र ने उसकी कमर को मजबूती से पकड़ लिया, "नहीं।"

मारिजा मछली की तरह फिसल गई और डाल से कूदकर नीचे झाड़ियों में खड़ी हो गई। बोली—
"अच्छा तो मैं जाती हूँ। कल बोरिया के घर तुम्हारा खाना है और नाच भी है, आओगे न?"

पींट्र ने कूदकर उसे पकड़ लिया। अब वह मछली की तरह फिसल न सकी। वह जोर से उसकी छाती के साथ लग गई और एक आह भरकर बोली, "क्या चाहते हो?"

पींट्र ने धीरे से एक अंगूर का दाना उसके होठों के बीच रख दिया।

शाम को जब पींट्र, पेड़ो का आठवाँ लड़का, अपने सुन्दर रूमानी गीत गाता हुआ घर पहुँचा तो उसने बाप की लाश देखी और इससे परे फर्श पर उसने अपनी माँ को नगा देखा। सिपाही उसके साथ बलात्कार करके और उसे जान से मार के चले गये थे और आठ बच्चों की माँ जमीन पर नगी पड़ी थी और उसकी दूध-भरी छातियों के बीच एक गहरा घाव था और उसके हाथ में कागज का पंखा था और उसकी नगी पिंडलियों पर खून जम गया था।

पींट्र ने अपनी माँ का फटा-पुराना फ्राक जो एक तरफ पड़ा था अपनी माँ के मुर्दा शरीर पर डाल दिया। कोई उसके पास आकर खड़ा हो गया। यह बुड्ढा माली था, बोला, "इसे फ्रांको के सिपाहियों ने मार डाला। मुझ से तुम्हारे घर का पता पूछ रहे थे।"

पींट्र ने कुछ न कहा।

बुड्ढा बोला, "चलो, इन लाशों को ठिकाने लगा दें। मैं गाँव के आदमियों को बुलाता हूँ।"

पींट्र ने जोर से फर्श पर थूका, फिर वह तेजी से घर से निकल गया। गाँव से बाहर चला गया। बुड्ढा माली उसे आवाजें देता रह गया लेकिन पींट्र ने एक बार पलटकर भी न देखा।

× × ×

इस घटना के छः महीने बाद पींट्र मैड्रिड में पकड़ा गया। तला

लेने पर उसके पास से रिवाल्वर, ब्रेन गन और हथगोले निकले। वह इन हथियारों को मैड्रिड से बाहर ले जा रहा था अंडर ग्राउंड काम करने वाले कम्युनिस्टों के लिए।

सार्जेण्ट मार्कस ने उसे बहुत हंटर मारे, "अब भी वक्त है, सच-सच बता दे !"

पॉंट्र कुछ न बोला।

सार्जेण्ट मार्कस बड़ा खूबसूरत जवान था। उसका रंग ताँबे की तरह था और मूँछें लार्ड किचनर की तरह। उसका अमीर बाप उसे गिरजाघर में भरती कराना चाहता था क्योंकि गिरजे में प्रवेश करना और उसमें काम करना स्पेन में सबसे अच्छा धन्धा है। मगर मार्कस चर्च में दाखिल न हुआ। उसने पुलिस विभाग को ही अच्छा समझा। असल बात यह थी कि उसे मैड्रिड की वेश्याओं से इश्क था और यह इश्क वह गिरजे में रहकर इतनी सुविधा से नहीं पूरा कर सकता था जितना कि पुलिस में नौकरी होकर। मार्कस अभी सार्जेण्ट था लेकिन उसके कारनामों से इतनी आशा बँध चली थी कि वह बहुत तरक्की कर लेगा।

मार्कस ने हर तरह के अत्याचार से काम लिया मगर लड़के ने कोई जवाब न दिया। मार्कस जल्दी में था। शाम को वह अपनी प्रेमिका के साथ पिक्चर देखने जा रहा था और यह बेवकूफ लौंडा अपना अपराध स्वीकार ही नहीं करता था। मार्कस ने बार-बार घड़ी देखी। "पन्द्रह मिनट में अपना अपराध स्वीकार कर लो, नहीं तो तुम्हें मारकर भगा दूँगा।"

पॉंट्र चुप था।

मार्कस ने घड़ी उठाकर सामने रख ली और सिपाहियों को इशारा किया।

सिपाही बाहर जाकर कब्र खोदने लगे। आजकल स्पेन में कम्युनिस्टों को जिन्दा कब्र में गाड़ देने का रिवाज बहुत है। मार्कस बचा

को भी यही करना था। वह भी बहुत जल्दी क्योंकि उसे ठीक छः बजे अपनी प्रेमिका से कोलम्बस होटल के फोयर में मिलना था। वक्त बहुत कम था और कब्र अभी खुदी न थी और सार्जेण्ट मार्कस ने क्रोध में आकर सिपाहियों को पीटना शुरू कर दिया।

"जल्दी जमीन खोदो सूअर के बच्चो!"

पीट्र को इस कब्र में खड़ा कर दिया गया। "अब भी समय है, बोलो!"

पीट्र चुप रहा।

सार्जेण्ट ने इशारा किया। सिपाही इसके चारों ओर मिट्टी डालने लगे। मिट्टी पीट्र की कमर तक आ गई।

"नाम बता दो उन कम्यूनिस्टों के जिनके लिए तुम हथियार ले जा रहे थे—मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, तुम्हें पुलिस में अच्छी-सी नौकरी दिला दूँगा यद्यपि तुम उम्र में बहुत छोटे हो।"

पीट्र बिलकुल चुप रहा। मिट्टी उसकी छाती तक आ गई।

"बोलो, इस उम्र में मरने से क्या फायदा! मैं तुम्हें समुन्दर के किनारे किसी गाँव में एक छोटा-सा घर दिला दूँगा। तराशे हुए पत्थरों का पक्का घर जिसके आसपास अंजीर के पेड़ होंगे और अंगूर की बेलें और सुन्दर गुलाब और घर के आँगन में एक थिरकती हुई तितली तुम्हारी बीवी बोलो, ये सब छोड़कर एक कम्यूनिस्ट कुत्ते की मौत क्यों मरना चाहते हो।"

पीट्र ने अपनी कब्र में खड़े-खड़े ऊपर देखा। उसके सिर के ऊपर अंजीर के पेड़ की टहनियाँ थीं और उनसे ऊपर आसमान था, खुला, नीला, विशाल। वह देर तक उस आसमान की ओर देखता रहा। वह खेत, एक घर, आँगन में मारिया के थिरकते हुए कदम, मुर्गी के चूज़े, सात नहीं ग्यारह, ग्यारह नहीं सात, दो सुनहली नावें साथ-साथ बहती हुई, वह पतले-पतले लाल होंठों में दबा हुआ अंगूर का नरम-नरम दाना सूनन् सूनन ।

पींटू देर तक आसमान की ओर देखता रहा। आँसू उसके गालों से बह निकले। फिर उसने धीरे से गर्दन झुका ली।

"बोलो," सार्जेण्ट ने नरमी से कहा।

पींटू ने उसे अपने पास आने का इशारा किया।

सार्जेण्ट मार्कस उसके पास जाकर उसके सामने बैठ गया। "शाबाश जल्दी बोलो, मेरे पास वक्त कम है। शाबाश, मैं मार्शल फ्रांको से सोने का तमगा दिला दूँगा। वह स्वयं तुमसे हाथ मिलाएँगे।'

पींटू ने जोर से उसके मुँह पर थूक दिया।

मार्कस ने ठोकरें मार-मारकर पींटू का चेहरा लहूलुहान कर दिया। पींटू का चेहरा हाडमाँस का था और मार्कस के फौजी बूट में मोटी-मोटी लोहे की कीलें थीं—लोहा और माँस

मार्कस ने गाली बकते हुए कहा, "इसके सिर पर मिट्टी डाल दो जल्दी से जिससे यह झट मरकर पहुँच जाए।"

सिपाही मिट्टी डालने लगे। मिट्टी पींटू की गरदन तक आ गई। सिपाही और मिट्टी डालने लगे। एकाएक मार्कस का एक नया ढंग सूझा, हँसकर बोला, "ठहरो, अब की बार एक नया ढंग निकालते हैं, इन हरामजादों को जीते जी दबाने का। अच्छा इसका एक हाथ बाहर निकालो और इसको जिन्दा दबा दो। इस गद्दार जमीन में केवल इसके हाथ को कब्र से बाहर रहने दो जिससे लोग इसे देखकर सीख लें।"

पींटू को जीते-जी कब्र में दबा दिया गया। केवल उसका हाथ ऊपर रहा। यह हाथ जो बार-बार काँप जाता था, यह हाथ था थर्मा-मीटर की तरह था, जिसमें बुझते हुए जीवन की गरमी और बढ़ती हुई मौत की ठंडक का अन्दाज हो सकता था। कुछ पलों के लिए मार्कस ने इसे देखा और फिर वह अपनी मोटर गाड़ी पर बैठकर अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए चला गया जो मालकम होटल के सजे हुए फोयर में उसकी राह देख रही थी।

शाम के झुटपुटे में लेन्टो आदमियों ने पुलिस चौकी के बाहर

अजीर के पेड़ के नीचे इस नई कब्र को देखा जिसके बीच में से एक जवान हाथ, एक तना हुआ, अकड़ा हुआ हाथ खड़ा था। यह हाथ जो एक सुन्दर पौधे की तरह कब्र की गोद से बाहर निकल आया था, यह हाथ जो सीधा तना खड़ा था, एक अजेय निश्चय की तरह, और उसकी मुट्ठी जोर से अन्दर को भिंची हुई थी, एक पके हुए अंजीर की तरह, और उसके हाथ के ऊपर अंजीर की डालियों की छाया थी और हरे-हरे पत्तों में गहरे लाल अंजीर मुस्करा रहे थे।

खलल है दिमाग का

सबसे पहली बात जो मेरी समझ मे इस वक्त आई है वह यह है और यह बात मैं आपको इस कहानी के शुरू मे बताना चाहता हूँ जिस-से बाद मे गलत-फहमी न रहे किसी किस्म की। हा, तो बात यह है कि मुझे मुहब्बत के लफ्ज से, मुहब्बत की कल्पना से और मुहब्बत के नाम से ही नफरत-सी हो गई है। पहले तो हिन्दुस्तान में मुहब्बत होती ही नहीं, सिरे ही से गायब है, जैसे यहा और बहुत सी चीजें होने पर भी नहीं हैं। हिन्दू और मुसलमानों को ही ले लो। कहने को तो ये लोग हिन्दू और मुसलमान हैं लेकिन सच तो इनमे एक भी ऐसा नहीं जो असल में मुसलमान हो या हिन्दू हो। कहने को तो ये लोग और इनका देश हजारों बरसों का पुराना और सभ्य है लेकिन जितने कमीने जितने हैवान जितने जालिम इस देश के वासी हैं शायद हिटलर ने फासिज्म मे अपने उत्थान के समय में भी न पैदा किए हों। जो हाल यहा के इन्सानों का है वही हाल यहा की मुहब्बत का है। मेरा तो ख्याल है कि इस मुल्क में मुहब्बत ही नहीं। अगर कहीं है तो इतनी मरी मरी सी, इतनी घुटी-घुटी सी, बुरे हाल में, टूटी-फूटी [illegible] मुहब्बत से तो जीती-जागती नफरत ही अच्छी मालूम होती है। दूर क्यों जाइए, इस मुल्क के मुहब्बत करने वालों को ही देखिए, [illegible]

राका, सोहिनी महीवाल, रूपमती बाज बहादुर, अफजलखां, जैबुलनिसा और आप किसी मुहब्बत करने वाले की जिन्दगी को ही देखिए आप उसमें एक अजीब तरह की निराशा, नामर्दी, मुर्दनी का प्रभाव देखेंगे। एक पुराने बीमार की सी हालत इस मुहब्बत की भावना पर छाई रहती है। यानी मरे जा रहे हैं मगर मुहब्बत का शब्द जबान पर नहीं आएगा। जो कहना चहते है कहने की हिम्मत नहीं। यूँ दिन-भर प्रीतम के विरह में घुले जाएँगे, शमा की तरह जल जाएँगे मगर बक-वास नहीं करेंगे कि हा हम भी मुहब्बत करते हैं। आखिर बताओ कहां जाएँ? वह सोचती है कि सोहिनी रात को चनाव पर अपने प्यारे से मिलने जाती है वह राजा है कि फकीर बनकर भैंस चराता है वह अफ-जल खा है कि लोहे की देग में उबलकर मर जाता है मगर किसी साले में इतनी हिम्मत नहीं कि जुबान से कह सके मिया देखो, हमें तुमसे मुहब्बत है। इसका कोई इलाज करो। इतनी निकम्मी जड और बौंचू किस्म की मुहब्बत इस देश में। काश! इस देश में मुहब्बत कम होती और नफरत ज्यादा होती तो कब का इस मुल्क में सोशलिज्म आ गया होता! मगर हमें तो इस मुहब्बत ने मार डाला! और किसी मुल्क में दुनिया के किसी कोने में कोई आदमी अपने दुश्मन से मुहब्बत नहीं करता है और अगर कोई करता है तो हिन्दुस्तान वाला। जिस मुल्क में सापों को दूध पिलाने वाला रिवाज हो उस देश में जो कुछ भी हो जाय कम है। खैर साहिब, मुझे क्या, मै तो कहानी सुनाने वाला हूँ। दो पल ममत चाहता हूँ। दो हजार साल के इतिहास से मेरा क्या सरोकार? यह मुहब्बत की बात तो यूं आ गई कि मैं आपको मुहब्बत की कहानी सुनाने जा रहा था। यह कहानी हमारे कसबे के जैलदार साहब की है जिन्हें अपने गाव की लड़की छबीली से मुहब्बत थी। वास्तव में जैल-दार साहब को गाव की हर नौजवान लड़की से मुहब्बत होती है। यह अलग बात है कोई उनसे मुहब्बत करे या न करे और मैंने जैलदार साहब को गाव की नन्हीं लड़कियों बल्कि ऐसी लड़कियों से भी मुहब्बत

करते देखा है जो है ही नहीं। जैसे उनका यह कहना। गाँव के लोहार की गर्भवती बीवी पारो के बारे में मुझे अभी तक याद है, सुबह का वक्त था, ऊदे-ऊदे बादलों से आसमान घिरा हुआ था। आम और जामुन के पेड़ों पर पक्षी खुशी से चहचहा रहे थे। घास पर शबनम की लागों...दे बस यूं समझिए कि वातावरण मे जोश मलीहाबादी की कविता तड़प रही है। ऐसे वक्त में मैं और जैलदार साहब जरा घूमने जा रहे थे। सुबह सैर करना बड़ा सेहतमन्द है। सैर हो जाती है रास्ते में हरा... ताली मिल जाती है और पनघट पर जवान लड़कियां भी देखने में आ जाती हैं। मालूम नहीं क्यों जैलदार साहब क्यों रोज सुबह सैर को निकलते थे मैं तो सिर्फ सेहत ठीक करने के खयाल से निकलता था और फिर यह खयाल भी था चलो, गाँव का हाकिम साथ है, अच्छा रहेगा, लोगबाग सलाम ही करेंगे—हां, तो मैं वह कहना तो भूल ही गया जो जैलदार साहब ने पारो को देख कर कहा। कहने लगे—मियां यह पारो शादी से पहले बहुत अच्छी थी। फिर एक लम्बी चुप्पी के बाद बोले, इसकी बेटी भी बहुत अच्छी होगी। मैंने सोचा बेचारी पारो की बेटी म... जैलदार साहब की मुहब्बत की तीव्र गर्भ के साथ ही पड़ गई। चलो, यह भी अच्छा हुआ, कहीं वह लड़की पैदा होती, बड़ी होती जवान होती, जैलदार इसे देखते फिर तीरे नजर से घायल होते जब जाकर मुहब्बत करते तो क्या खाक करते। मुहब्बत वह जो माशूक के पैदा होने से पहले पैदा हो। इस मामले मे जैलदार साहब से अच्छी मुहब्बत करने वाला मेरी नजर में कोई नहीं। आप की नजर में हो तो उसकी कहानी आप सुनाइए।

जैलदार साहब को गाँव के चमार की बड़ी बेटी छबीली से मुहब्बत हो गई और वह भी सच्ची। यद्यपि इससे पहले जैलदार साहब गाँव की कई एक लड़कियों से सच्ची मुहब्बत कर चुके थे मगर आखिर में वह मुहब्बत खुद झूठी-सी हो जाती थी। पर अब कि जैलदार साहब ... खुद मुझसे कहा था इस बार... चमारन से मुझे सच्ची मुहब्बत है

गई है। जैलदार साहब इससे पहले तीन ब्याह कर चुके थे और तीनों से बारी-बारी सच्ची मुहब्बत की थी। इसके बाद उन्होंने आस पास अड़ोस-पड़ोस में सच्ची मुहब्बत की और इसी तरह सच्ची मुहब्बत करते-करते दूसरे गाँव तक पहुँच गए। एक दफा जेल भी पहुँचने वाले थे मगर रुपये ने छुटा लिया। वास्तव में सच्ची मुहब्बत करने वाले इस देश में बहुत हैं मगर रुपया हर एक के पास नहीं होता और सच्ची मुहब्बत वहीं सफल होती है जहाँ रुपया हो। यह सच्ची मुहब्बत का गुण है अगर आपके पास रुपया हो तो आप देखेंगे कि आप से सच्ची मुहब्बत करने वाले इस देश में आप को बहुतेरे मिल जाएँगे। हाँ, अगर रुपया न हो तो सच्ची मुहब्बत करना इस देश में खतरे से खाली नहीं है।

छबीली पर मेरी भी आँख थी। मैं ठहरा गाँव का स्कूल-मास्टर यानी गाँव के लड़कों के चरित्र का रखवाला। गाँव वालों की सूझ-बूझ में गाँव का स्कूल-मास्टर वही अच्छा होता है जो लगभग नामर्द ही हो। इसलिए गाँव के स्कूल-मास्टर से कोई आशा नहीं करता कि वह भी किसी लड़की से मुहब्बत कर सकता है। क्योंकि ऐसा करने से गाँव के सामाजिक जीवन में एक भूचाल आ जायगा और गाँव के बच्चों के चरित्र तबाह हो जाने का डर है। यही कारण है कि मैं गाँव का स्कूल-मास्टर होकर और चरित्र और विद्या का रखवाला होकर किसी लड़की से मुहब्बत न करता था। और अब तो किसी शास्त्र में नहीं लिखा है कि एक जवान, स्वस्थ और मज़बूत आदमी किसी लड़की पर आँख भी नहीं रख सकता। बस यही काम मैंने भी किया। मैं छबीली से मुहब्बत भी करता लेकिन गाँव वाले इस बात की इजाज़त एक स्कूल-मास्टर को कहाँ देते थे।

तो जैलदार साहब और मैं हर रोज़ सुबह सैर को जाया करते। कभी-कभी पनघट पर या रास्ते में या जंगल के किनारे जहाँ कोई न होता हमारी मुलाकात छबीली से हो जाती। हाय, मुझे वे कहानियाँ

कितनी पसन्द है जहाँ दो मुहब्बत करने वाले किसी दरिया, नदी या जंगल के किनारे अकेले मिल जाते हैं, जी चाहता है बार-बार उन कहानियों को पढ़ा करूँ। ज़रा सोचिए तो सही अगर आपकी प्रियतमा आपको किसी जंगल या नदी के किनारे अकेले में मिल जाय तो कैसा रहे। इसकी कल्पना-भर से ही आपका दिल बल्लियों उछलने लगता है। है न? ज़रा सोचिए तो सही हम कहानीकार भी आपकी इस कमजोरी से कितना फायदा उठाते हैं और अपनी हर कहानी में एक न-एक ऐसा मौका ज़रूर पैदा कर देते हैं और खुदा की कसम कि आप भी इस कदर गदहे हैं कि इन कहानियों को बार-बार पढ़ते हैं और कभी नहीं सोचते कि एम० असलम मुमताज़ मुफ्ती से अधिक पोपुलर क्यों है।

हाँ तो, छबीली हमें अकेली जंगल के किनारे या पनघट पर या रास्ते में कई बार मिली। हम तो चूँकि उसपर सिर्फ आँख रखते थे इसलिए सिर्फ देख-भर ही लेते थे। हाँ, जेलदार साहब देखने में आगे उससे बातें भी करते थे। हँसी-मज़ाक, ठट्ठा और छेड़-छाड़ कि सच्ची मुहब्बत में यही सब-कुछ होता है। वह भी चमककर जवाब देती, भाव बताती, बिगड़ जाती, मान जाती मगर पल्लू तक छूने न देती। इस बात का जेलदार साहब को बेहद दुख था कि साली बड़ा इज़्ज़तदार है, पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देती। फिर भी वह सच्चा मुहब्बत किए जाते थे, भेंट उपहार, चाँदी के छल्ले, रेशम के कपड़े, तिल्ले के काम की जूतियाँ जो छबीली का बाप खुद बनाता था, रुपये—गोल-गोल तराशे हुए सोने के टुकड़े, चाँदी के टुकड़े, आत्मा निकल जाती जोकि के टुकड़े—मगर रुपये। छबीली का बाप बड़ा समझदार था। उसने आहिस्ता आहिस्ता इन रुपयों से [illegible] का [illegible] उतार दिया। [illegible] साहब से अपनी ज़मीन साफ करा ली। [illegible] मकान [illegible] करा ली और अपनी बेटी को हाथ भी न लगाने दिया। [illegible] ऐसा बुड्ढा बर्गं का बाप है जो यह सब [illegible] [illegible]

पहले तो इज्ज़त-इज्जत करते सूख जाते हैं और जब बिल्कुल उम्मीदों का अकाल पड़ जाता है तो फिर अपनी लड़कियों को इज्जत बेचने के लिए छोड़ देते हैं। और फिर इनकी याद में रोते रोते मर जाते हैं। इस तरह के झूठे निकम्मे और अपने-आप को धोखा देने वाले लोग हैं ये! मगर छबीली का बाप ऐसा नहीं था। न छबीली ऐसी लड़की ही थी। ये लोग गरीब थे, मध्यवर्ग के न थे। मध्यवर्ग की शराफत इनमें नहीं थी और न वे मध्यवर्ग की तरह सोच ही सकते थे। वे गरीबों के समाज में पले-बढ़े थे, ज़ैलदार से रोज इनकी मुठ-भेड़ होती थी, सदियों से हो रही थी, वे उसका मुकाबला करना खूब जानते थे, हार भी जानते जीत भी जानते, चाहे कुछ भी हो अपने वातावरण को जितनी अच्छी तरह वे समझते थे और कौन समझ सकता है। इस कहानी वाले से यह तो नहीं हो सकता कि वह उनके जीवन ढंग-पर नुक्ताचीनी कर सके। हाँ आप कर सकते हैं क्योंकि आपकी बेटियाँ घर में रहती हैं, स्कूलों में पढ़ती हैं, क्लर्कों से ब्याही जाती हैं और उनका पाला कभी किसी ज़ैलदार से नहीं पड़ा, मेरा मतलब है सीधे-सीधे उससे निपटना नहीं पड़ता।

अच्छा, ज़ैलदार साहब और छबीली का किस्सा मशहूर होता गया। लड़कियाँ गीत गाने लगीं, चरवाहे सीटियाँ बजाने लगे, ज़ैलदार साहब रात-दिन छबीली के प्यार में डूबे रहने लगे, उनका शरीर घुलता गया, रंग पीला पड़ता गया, प्रायः सुबह को कै भी कर देते, क्योंकि सच्ची मुहब्बत में यूँ भी होता है। कई मुहब्बत करने वाले आत्म-हत्या भी कर लेते हैं। मगर ज़ैलदार साहब कै तक ही रहे और बात सिर्फ यह थी कि ज़ैलदार साहब अपने सभी भेंट उपहारों और सच्चे वचनों और सच्ची मुहब्बत होते हुए भी छबीली के शरीर को हाथ न लगा सके। वह ऐसी हरामज़ादी थी कि ज़ैलदार साहब से सच्ची मुहब्बत जताने पर भी इसके लिए तैयार न होती थी जब तक कि इनकी शादी न हो जाय।

शादी ? आप ठठक क्यों गये ? क्या हर सच्ची मुहब्बत का नतीजा शादी नहीं ? शादी चाहे स्वर्ग में हो या जमीन पर, शादी का मतलब यही है ताकि औरत और मर्द दोनों साथ रहें और लोग उनके इस तरह साथ जीवन बसर करने को बुरा न कहें। अगर यह बात शादी के बिना प्राप्त हो जाय तो फिर शादी की क्या जरूरत है ? मगर चूँकि लोगों की मूर्खता के कारण ऐसा नहीं होता इसलिए छबीली शादी पर जोर दे रही थी और जैलदार साहब सच्ची मुहब्बत पर जोर दे रहे थे कि सच्ची मुहब्बत में जहा दो दिल, आप समझे न, जहा दो दिल, दो रूहें आपस में मिल जाएँ वहाँ खुदा देखता है वहा शादी की क्या जरूरत है इत्यादि। मगर छबीली इस तर्क को नहीं मानती थी, फल यह हुआ कि जैलदार साहब इसी तरह सच्ची मुहब्बत करते रहे।

फिर आखिर एक रोज जैलदार साहब ने शादी के लिए हा कहदी, याद रहे यह बात दो-डेढ़ साल से चल रही थी। जैलदार साहब को सच्ची मुहब्बत ने इतना सताया था कि वह ऊबकर इस लड़की को किसी भी मूल्य पर पाने के लिए तैयार थे। जिन्दगी की बड़ी-से-बड़ी कुरबानी अपनी बड़ी से-बड़ी दौलत भी लुटाने के लिए तैयार थे, शादी तो मामूली चीज थी। वह पहले जरा झिझके। चमार की लड़की से शादी ! मगर फिर सच्ची मुहब्बत से मजबूर हो गये। अगर मुगल बादशाह गुलामों की लड़कियों से निकाह कर सकते थे, अगर महाराजा शान्तनु एक मछेरे की छोकरी से ब्याह कर सकते थे तो क्या जैलदार साहब को इसका अधिकार भी न था कि वह छबीली से शादी कर सकते ? हरि ओम् तत् सत् ! आमीन !

धर्म और ईमान जब शादी के लिए तैयार हो गये तो शादी की तैयारियां होने लगीं। सब लोग हैरान थे, भौंचक्के रह गये, कोई दूसरा होता तो शायद गाँव से बाहर निकाल दिया जाता। मगर जैलदार और फिर गाँव का मालिक ! और फिर इतने हजारों रुपये का मालिक— गोल-गोल सोने के तराशे हुए टुकड़े, चाँदी के टुकड़े, आधी चाँदी और

आधी निकल के टुकड़े। सभी ने जैलदार साहब को इस शुभ काम और सच्ची मुहब्बत के लिए बधाई दी। जब कोई अमीर किसी गरीब से शादी करने के लिए तैयार हो जाय तो उसकी उदारता की चर्चा हर जगह होती है और जब कोई गरीब किसी अमीर से शादी करने के लिए कमर कस ले तो सारी दुनिया उसके ख़िलाफ़ हो जाती है। सच्ची मुहब्बत वहां भी होती है, सच्ची मुहब्बत यहाँ भी होती है। फ़र्क़ इतना है कि वहाँ रुपया भी होता है और यहाँ सिर्फ़ सच्ची मुहब्बत होती है।

शादी से पहले छबीली ने यही शर्त रखी कि उसके बाप को छ हज़ार रुपया जैलदार दे। जैलदार साहब पहले तो बहुत भन्नाए और उनके दिल में सच्ची मुहब्बत न होती तो इन्कार कर देते मगर उन्होंने ऐसा न किया और चुपके से ये रुपये दे दिए ताकि वह अपने बाप को दे दे। यह शादी से एक दिन पहले की बात है।

जिस रोज शादी होने वाली थी उस दिन छबीली गाँव से गायब हो गई यानी बिल्कुल गायब हो गई। सब कुछ धरा रह गया। जैलदार साहब पहले तो यह खबर सुनकर बेहोश हो गए, सच्ची मुहब्बत का असर था, जब होश में आये तो लगे गालियाँ बकने और पुलिस की धमकियाँ देने। ये जैलदारी का असर था या सच्ची मुहब्बत का यह मैं नहीं जानता। छबीली का बाप भी बहुत बिगड़ा क्योंकि उसकी लड़की ने उसे सिर्फ़ चार हज़ार रुपया दिया था और दो हज़ार रुपया और कुछ ज़ेवर और कपड़े लेकर वह खुद भाग गई थी एक दूसरे आदमी के साथ जिसे उसके साथ सच्ची मुहब्बत न थी बल्कि जो उस पर सिर्फ़ आँख रखता था यानी यह आपका सेवक, गाँव का स्कूल-मास्टर।

जैलदार साहब और छबीली के बाप ने आख़िर हम दोनों को पकड़वा लिया। हम दूर के एक गाँव में पकड़े गए। लेकिन हम कितनी ही दूर क्यों न चले जाते रुपया हमें जरूर पकड़ बुलवाता। जैलदार साहब ने डाक्टर को रिश्वत दी और अदालत में यह साबित हो गया

कि छबीली नाबालिग है, वह गर्भवती थी मगर नाबालिग थी, वह मेरी बीबी थी मगर नाबालिग थी क्योंकि

१. डाक्टर ऐसा कहता था
२. जैलदार साहब को सच्ची मुहब्बत थी
३. उसके बाप को पूरे छः हजार रुपये न मिले थे। नतीजा यह हुआ कि स्कूल-मास्टर को तीन साल की कैद हो गई।

× × × ×

कैद काटने के बाद मैं बम्बई आ गया। मैंने स्कूल की टीचरी छोड़ दी और आजकल जूते बनाता हूँ। इससे एक तो लड़कों के चरित्र पर बुरा असर नहीं पड़ता, दूसरे मुझे रुपये भी ज्यादा मिलते हैं। गाँव का टीचर पन्द्रह रुपये लेता है। मैं एक जूते के बीस रुपये लेता हूँ। और मैं और छबीली महीने में दस बारह जूते तैयार करके बेच डालते हैं। हमारी बच्ची अलबेली सचमुच बड़ी अलबेली है। छबीली को यकीन है कि अलबेली बड़ी होकर ज़रूर किसी मिल के मालिक को सच्ची मुहब्बत का मजा चखायगी।

लाला घसीटाराम

मान्दाकला ज़िला लाहौर के नेकदिल आढ़ती लाला घसीटाराम को कौन नहीं जानता। आप सांडाकला के सबसे बड़े रईस हैं। सारा गाँव आपका ऋणी है। गाँव के सारे मकान आपके पास गिरवी पड़े हुए हैं। गाँव की बहू-बेटियों का सारा जेवर आपके पास रेहन है। इस पर आपकी शराफत का यह हाल कि आज तक कभी भूले से किसी ऋणी की कुर्की नहीं होने दी। अगर वह सूद नहीं दे सका तो आपने सूद नहीं लिया। इन्तज़ार करते-करते कई साल बीत गये पर आपने सूद नहीं लिया। उल्टा अपने पास से कुछ और रुपया देकर उस कारोबार पर लगाया। इस तरह सैकड़ों लोग आपकी उदारता से लाभ उठाते रहे हैं। अगर किसी ने झगड़ा भी किया तो आपने हमेशा तरह दी और बात को टाल गए। अगर मामला अदालत तक पहुँचा तो आपने इच्छा न रहते हुए भी उसके खिलाफ डिग्री ले ली लेकिन उसको इजरा कभी न कराया। लाला घसीटाराम को हमेशा अदालत से डिग्री मिल जाती थी क्योंकि अदालत भी जानती थी कि लाला घसीटाराम मामले का सच्चा है।

लाला घसीटाराम के स्वभाव में सहनशीलता घुट्टी में पड़ी है। सांडाकला में हिन्दू कम हैं मुसलमान ज्यादा हैं। ये लोग अपने छोटे

कर्मों की वजह से हमेशा हिन्दुओं से ज्यादा ऋणी, ज्यादा ज़रूरतमन्द, ज्यादा परेशान हाल देखे गये । लाला घसीटाराम अपने गाँव के सारे मुसलमानों को जानते हैं और उनसे बड़ी नर्मी और मुहब्बत से पेश आते हैं । लाला घसीटाराम के मुँह से कभी किसी मुसलमान ने कड़वे बोल नहीं सुने बल्कि बहुत से हिन्दू तो यह कहते सुने गये कि लाला घसीटाराम हमेशा मुसलमानों की तरफदारी करते हैं । यद्यपि इस बात में कोई सचाई नहीं है क्योंकि लाला घसीटाराम अपने नियमों पर ही चलने वाले हिन्दुस्तानी हैं । वह हर रोज़ पूजा-पाठ करते हैं । अपने घर में ठाकुरद्वारा बना रखा है । इसमें रोज़ सुबह शाम दो घण्टे बैठते हैं और अपने इष्ट को याद करते हैं । वह हिन्दू हैं मुसलमान नहीं हैं लेकिन मुसलमानों से बड़ी नम्रता बरतते हैं । अभी पिछले साल उन्होंने मसजिद के लिए चन्दा दिया था और जब जुम्मे मोची का स्वर्गवास हुआ था और उसकी जवान बेटी अकेली रह गई थी तो उसकी देख-भाल भी लाला घसीटाराम ने ही की थी और खुद अपने हाथों उसकी शादी सादाखुर्द के एक शरीफ नेक-चलन मोची से कर दी थी । लाला घसीटाराम कभी-कभी इस जोड़े को देखने के लिए सादाखुर्द जाया करते और उस लड़की की हथेली पर दो-चार रुपये धर आते । सादाखुर्द का मुसलमान नम्बरदार भी लाला घसीटाराम का ऋणी था और हमेशा लाला की भलमनसाहत की चर्चा पचायत में सुनहरे शब्दों में किया करता था ।

लाला घसीटाराम की दो बीवियाँ मर चुकी थीं, इनसे छ-सात लड़के बाले थे जो अब जवान हो चुके थे । फिर लाला घसीटाराम ने तीसरी शादी की थी और अपनी सफेद मूँछों पर और सिर के बालों पर खिज़ाब लगाया था और वह अक्सर सादाकला के हकीम मुहम्मद वारिस अल्वी से दवा लेकर खाते रहते थे । इस उम्र में भी उनका रंग तांबे की तरह चमकता था और वह सुबह-शाम चार-छ मील पैदल सैर करने जाते । सैर के वक्त वह प्राय गाँव के पश्चिमी कुओं पर ज़रूर

ठहरते और घड़ी दो-घड़ी अपने गांव की बहू-बेटियों और माताओं से बात-चीत करके उनसे उनके घर के हालात पूछते और उनकी तकलीफों में हिस्सा बँटाते। लाला घसीटाराम पर गांव की औरतों को बड़ा विश्वास था। वह प्राय दूकान पर आकर या रास्ते ही में उन्हें आते-जाते देखकर इनका रास्ता रोक लेतीं और इनसे निजी मामलों में सलाह माँगतीं। तीन शादियाँ करके लाला घसीटाराम घर के मामलों में निपुण हो गए थे। इसलिए उनकी सलाह औरतें बड़ी खुशी से मानतीं। कई घरानों के बरसों पुराने झगड़े लाला घसीटाराम ने इतनी चतुराई से तय कर दिए कि दिन-रात लोग इनका यश गाते थे।

लाला घसीटाराम दशहरा और ईद बड़ी धूमधाम से मनाते थे। वह मुस्लिम-लीग को चन्दा देते थे और कांग्रेस को भी। सरकारी वार-फंड में भी उन्होंने एक अच्छी रकम डिप्टी कमीश्नर साहब बहादुर की मारफत भेजी थी जिसके बदले में उन्हें सरकार ने राय साहब का खिताब प्रदान किया था। इस मौके पर सादाकला के हर व्यक्ति ने बड़ा खुशी दिखाई थी और गाँव की औरतों ने खुशी से ढोल गाए थे और सादा-खुर्द के मिरासियों ने और भाँडों ने, जो लाला घसीटाराम के ऋणी थे, गाँव वालों को मुफ्त तमाशा दिखाया था। इसके थोड़े दिनों बाद ही जब सादाकला में लोकल बोर्ड बना तो लाला घसीटाराम एक राय से उसके प्रधान नियुक्त हुए। थोड़े दिनों में लोकल बोर्ड और पचायती-कमेटी और कोआपरेटिव बैंक में हर कोई लाला घसीटाराम के गुण गाने लगा को-ऑपरेटिव बैंक तो एक तरह से लाला घसीटाराम का निजी बैंक हो गया क्योंकि इसमे सबसे ज्यादा हिस्से लाला घसीटाराम के थे। दूसरे गाँव वालों को एक-दूसरे पर इतना भरोसा नहीं था जितना लाला घसीटाराम पर। थोड़े ही दिनों में लाला घसीटाराम का नाम सादाकला और सादा-खुर्द से आगे बढ़कर मौज़ा जद्दो में पहुँच गया। वहां रुई की फसल बहुत अच्छी होती थी और शेख उमरअली और लाला परमानन्द इसका भुगतान करते थे। मगर अब मौज़ा जद्दो के लोग भी

लाला घसीटाराम के गुण गाने लगे। यहाँ लाला ने आढ़त की दूकान खोल दी और थोड़े ही समय में गाँव वाले जो इससे पहले शेख़ उमर-अली और लाला परमानन्द के ऋणी थे लाला घसीटाराम के ऋणी हो गए। इन लोगों में खुद शेख़ उमरअली और लाला परमानन्द भी शामिल हो गए।

पन्द्रह अगस्त के बाद लाला घसीटाराम ने सादाकला छोड़ दिया। उन्होंने हमेशा की तरह अब भी बड़ी होशियारी से काम लिया। वह उन थोड़े से लोगों में थे जिन्होंने बढ़ते हुए तूफान का अन्दाज़ा कर लिया था। इसलिए उन्होंने ज़िला होशियारपुर में एक छोटे से कसबे सदारंग में आढ़त की एक दूकान खोल ली थी और जालंधर के एक बैंक में अपना खाता भेज दिया था और अपनी तीनों बीवियों के गहने और सरकारी तमस्सुक और जगी कर्ज़ों की रसीदें वगैरह वगैरह। यहां पर इनके पास लोगों के गिरवी रखे हुए ज़ेवर और दूसरे कागज़ और पचास हज़ार रुपए की रकम ही बाकी रह गई थी। जब लाला घसीटा-राम सादाकला छोड़ने लगे तो उन्हें गांव वालों ने रो-रोकर रोका मगर वह नहीं रुके। उन्होंने अपने हाथ से सारे ज़ेवर और उनके कागज औरतों को एक-एक करके गिन-गिनकर वापस कर दिए और नोटों की गड्डियों को अपनी धोती की लपेट में छिपा लिया। दूकान उन्होंने शेख़ उमरअली के हवाले की और उससे हिस्सेदारी भी कर ली और फिर उन्होंने सादाकला छोड़ दिया क्योंकि इनके दोस्त पुलिस इन्स्पेक्टर साहब खां ने उन्हें सादाकला से चले जाने की सलाह दी थी। इसलिए वह एक पुलिस की लारी में सादाकला से विदा हुए और हिफाज़त से अमृतसर पहुँचा दिए गये।

सदारंग के कसबे में पहुँचकर उन्होंने अपने पचास हज़ार के नोट गिन लिए और इनमें से तीस हज़ार रुपये से उन्होंने सदारंग में एक बहुत बड़ी हवेली खरीद ली जो कसबे से ज़रा दूर बाहर खेतों में थी और किसी ज़माने में सदारंग के एक बहुत बड़े ज़मींदार की मिलकियत

थी। बहुत जल्दी ही उन्होंने कसबे में अपना प्रभाव जमा लिया। इनकी आढ़त की दूकान चमक गई क्योंकि अनाज मँहगा हो रहा था और पश्चिमी पंजाब से शरणार्थी लाखों की गिनती में चले आ रहे थे। और पूर्वी पंजाब से शरणार्थी मुसलमान लाखों की गिनती में पाकिस्तान भागे जा रहे थे। इस मौके पर लाला घसीटाराम ने शरणार्थियों और पनाह गज़ीनों की काफी मदद की। उन्होंने कसबे में एक सेवा-दल बनाया जो आनेवाले हिन्दुओं और जानेवाले मुसलमान दुखियारों की देखभाल में बड़े ज़ोर-शोर से हिस्सा लेता था। बहुत जल्दी इलाके में लाला घसीटाराम का नाम फैल गया और लोग उन्हें और उनके जान-माल को दुआएँ देने लगे। इलाके के बहुत से लोग बारी-बारी आकर उनके पास अपना कीमती सामान गिरवी रखने लगे और मकान रेहन रखने लगे और इस तरह खुशी-खुशी आणी होते गए। सरकार ने उन्हें यहा दो दूकानें एलाट कर दीं और एक मकान भी रहने को दिया। जहां उन्होंने अपने सेवादल का दफ्तर खोल दिया क्योंकि खुद तो वह उस गढ़ी हवेली में रह रहे थे जो कसबे से कुछ दूर बाहर खेतों में थी। इलाके के अफसर आते जाते लाला घसीटाराम के पास ठहरते और उनकी आवभगत, उनकी सूझ-बूझ और बुद्धि चतुराई की बेहद तारीफ करते। कई लोग तो तारीफ में इतने आगे बढ़ गए कि कहने लगे कि लाला घसीटाराम को तो मिनिस्टर होना चाहिए था। यह सुनकर लाला घसीटाराम बड़ी नम्रता से मुस्कराने लगते।

बीस नवम्बर उन्नीस सौ सैंतालीस को यानी पन्द्रह अगस्त से तीन महीने और पाँच दिन बाद लाला घसीटाराम की हवेली पर पाकिस्तान पुलिस के कहने पर छापा मारा गया और पुलिस ने बीस मुसलमान भगाई गई लड़कियाँ बरामद कीं। लड़कियों के बयान के मुताबिक लाला घसीटाराम इनसे कोई बुरा सलूक न करते थे। वह सिर्फ लड़कियों की आढ़त करते थे। वह मुसलमान लड़कियाँ सस्ते दामों खरीदते और मँहगे भाव बेच देते। भाव यह था :

चौदह से सोलह बरस की लड़की
—सात सौ पचास से एक हज़ार रुपये तक

सोलह से पच्चीस बरस की लड़की
—तीन सौ से पाँच सौ तक

मैट्रिक पास लड़की
—डेढ़ हज़ार रुपया

कालेज की पढ़ी हुई लड़की
—दो हज़ार रुपया।

लड़कियों के बयान के मुताबिक वह अब तक सैकड़ों लड़कियों का भुगतान कर चुके थे। अब बीस भगाई हुई लड़कियों मे एक माडाकला की लड़की भी थी जो पूरबी पंजाब में ब्याही गई थी। उसे लाला घसीटाराम ने खूब पीटा था और उसकी अस्मत लूटी थी और उससे कहा था कि वह दो हज़ार तोले सोना सादा कला की औरतों को वापस करके आये है। जब तक वह उसकी कीमत वसूल न कर लेंगे वह उसी तरह मुसलमान लड़कियाँ खरीदते और बेचते रहेंगे।

छ: महीने बाद लाला घसीटाराम को अदालत ने बरी कर दिया। पता चला बदमाशों ने धोखे से लड़कियाँ इनकी हवेली में दाखिल करके पुलिस को इत्तला कर दी थी। लाला घसीटाराम इज़्ज़त के साथ बरी हो गये। इनकी आढ़त की दूकान पहले से भी ज्यादा चलती है। बड़े-बड़े अफसर इनकी इज़्ज़त पहले से भी ज्यादा करते है। इनकी हवेली के बाहर गोरखे पहरा देते हैं और कभी-कभी आधी रात के वक्त वहाँ से चीखों की आवाज़ उठती है जिसे सुनकर कुछ लोग कहते हैं कि पाकिस्तान रो रहा है। कुछ लोग सोचते हैं हिन्दुस्तान रो रहा है और कुछ लोग कहते हैं न पाकिस्तान रो रहा है न हिन्दुस्तान, इस हवेली में इन्सान रो रहा है और यह हवेली सरहद के आर-पार दोनों तरफ खड़ी है।

पानी का पेड़

जहां हमारा गांव है उसके दोनों तरफ पहाड़ों की पथरीली पंक्तियाँ हैं। पूरबी पहाड़ों की श्रेणी हरियाली से शून्य नंगी है, उसके अन्दर नमक की खानें हैं। पश्चिमी पहाड़ी श्रेणियों के चेहरे पर झाड़-झंखाड़, अमलतास और कीकर के पेड़ उगे हैं, इसकी चट्टानें काली हैं लेकिन इन काली चट्टानों के अन्दर मीठे पानी के दो बड़े मूल्यवान् झरने हैं। इन दो पहाड़ी श्रेणियों के बीच एक छोटी-सी तलहटी पर हमारा गांव है।

हमारे गाँव में पानी बहुत कम है। जब से मैंने होश सम्भाला है मैंने अपने गाँव के आसमान को तपते हुए पाया है। यहां की जमीन को हांफते हुए देखा है। और गाँव वालों के मेहनत करने वाले हाथों और चेहरों पर एक ऐसी तरसी हुई भूरी चमक देखी है जो सदियों की अनबुझी प्यास से पैदा होती है।

हमारे गाँव के मकान और इसके आसपास की जमीन बिलकुल भूरी और सूखी दिखती है। जमीन में बाजरे की फसल जो होती है उसका रंग भी भूरा बल्कि कालिख लिए होता है। यही हाल हमारे गाँव के रहने वालों का है। और उनके कपड़ों का है। सिर्फ हमारे गाँव की औरतों का रंग सुनहरी है क्योंकि वे झरनों से पानी लाती हैं।

बचपन ही से मेरी याद में पानी की यादें हैं। पानी का दर्द और

उसकी मुस्कराहट, इसका मिलना और इसका खो जाना। हर छाती इसके छुटने की शुरुआत और इसके बिछुड़ने के अन्त से भरी रहती है।

मुझे याद है जब मैं बहुत छोटा-सा था तो दादी अम्मा के साथ गाँव की तलहटी के नीचे बहती हुई खेल नदी के किनारे कपड़े धोने के लिए जाया करता था। दादी अम्मा कपड़े धोती थीं, मैं उन्हें सुखाने के लिए नदी-किनारे चमकती हुई रेत पर डाल दिया करता था। इस नदी में पानी बहुत कम था। यह बड़ी दुबली-पतली नदी थी। छरहरी और मन्द। जैसे हमारे पड़ोसी सरदार सैदा खा की लड़की बालो। मुझे इस नदी के साथ खेलने में इतना ही मजा आता जितना बालो के साथ खेलने में। दोनों की मुस्कराहट मीठी थी और मिठास का मजा वही लोग जानते हैं जो मेरी तरह नमक की खान में काम करते हैं।

मुझे याद है हमारी खेल नदी साल में केवल छः महीने बहती थी। छ महीने के लिए सूख जाती। जब चेत का महीना जाने लगता तो यह नदी सूखने लगती। और जब वैसाख खत्म होने लगता तो बिलकुल सूख जाती और फिर उसके तल में कहीं-कहीं छोटे-छोटे नीले पत्थर रह जाते या नरम-नरम कीचड़ में चलने से यूँ मालूम होता था जैसे रेशम के कीमती गलीचे पर घूम रहे हों।

कुछ ही दिनों में नदी की कीचड़ भी सूख जाती और उसके चेहरे पर बारीक दरारों और झुर्रियों का जाल फैल जाता। किसी मेहनती किसान के चेहरे की तरह उसके होंठों पर खुश्क पिपड़ियाँ जम जातीं। और ऐसा मालूम होता जैसे इसकी गर्म माँसल रेत ने सालों से पानी की एक बूँद नहीं चखी!

मुझे याद है पहली बार जब मैंने नदी को इस तरह सूखते हुए पाया था तो बिलकुल बेचैन और परेशान हो गया था और इसी घब-राहट में मैं उस रात सो भी न सका था। उस रात दादी अम्मा बहुत देर तक गोद में लिए अजीब-अजीब कहानियाँ सुनाती रहीं और उस

रात दादी अम्मां की गोद में लेटे-लेटे मुझे खेल नदी की बहुत-सी प्यारी-प्यारी बातें याद आने लगीं। उसका हौले-हौले पत्थरों पर ठुमकते हुए चलना, दो पत्थरों के बीच से उसका तेज़ होकर और ज़रा कतराकर चलना, जैसे कभी-कभी बालो मुझसे गुस्सा होकर गली के मोड़ पर से तेज़ी से निकल जाती थी। फिर जहाँ दो पत्थर एक-दूसरे के बहुत निकट होते थे वहाँ मैं और बालो बाजरे की डंडियों से बनी हुई पनचक्की लगा देते थे और गीला आटा पिसाते थे। पनचक्की नदी की धीमी चाल के बावजूद कैसे तेज़-तेज़ चक्कर लगाकर घूमती थी और अब वह नदी सूख गई ' ''।

और इन सब बातों को याद करके मैंने दादी अम्मां से पूछा, "दादी अम्मा, वह हमारी नदी कहाँ चली गई ?"

"ज़मीन के भीतर घुस गई।"

"क्यों ?"

"सूरज के डर से।"

"क्यों ! वह सूरज से क्यों डरती है। सूरज तो बहुत अच्छा होता है।"

"सूरज एक नहीं है बेटा। दो सूरज हैं। एक तो सर्दियों का सूरज है। वह बहुत अच्छा और दयावान होता है। दूसरा सूरज गर्मियों का है, वह बड़ा तेज़, चमकीला और गुस्से वाला होता है। ये दोनों बारी-बारी से हर साल हमारे गाँव में आते हैं। जब तक सर्दियों का सूरज रहता है, हमारी नदी इससे बहुत खुश रहती है। लेकिन जब गर्मियों का जालिम सूरज आता है तो हमारी नदी के शरीर से उसके कपड़े उतारने शुरू करता है। हर रोज़ कपड़े की एक तह उतरती चली जाती है और जब वैसाख का आख़िरी दिन आता है तो नदी के शरीर पर पानी की एक पतली-सी चादर रह जाती है। उस रात को हमारी नदी शरम के मारे ज़मीन की गोद में छिप जाती है। और इन्तज़ार करती है सर्दियों के सूरज का जो अगले साल उसके लिए पानी की नई पोशाक

लाएगा।"

मैंने आँख झपकते हुए कहा, "सचमुच, गर्मियों का सूरज तो बहुत बुरा है।"

"लो अब सो जाओ बेटा।"

मगर मुझे नींद नहीं आ रही थी, इसलिए मैंने एक और सवाल पूछा, "दादी अम्मा, यह हमारे नमक के पहाड़ का पानी क्यों कड़वा है?"

हमारे गाँव में बच्चे पानी के लिए बहुत से सवाल करते रहे हैं। पानी उनकी कल्पना को हमेशा छूता रहा है। दूसरे गाँव में जहाँ पानी बहुत होता है वहा के लड़के शायद सोने के द्वीप ढूँढते होंगे या परियों के देश का रास्ता खोजते होंगे। लेकिन हमारे गाँव के बच्चे होश सम्भालते ही पानी की खोज में निकल पड़ते हैं और तलहटी पर और पहाड़ियों पर दूर-दूर तक पानी को ढूँढने का खेल खेलते रहे हैं। मैंने भी अपने बचपन में पानी को ढूँढा था और नमक के पहाड़ पर पानी के दो-तीन नये झरने खोजे थे। मुझे आज तक याद है मैंने कितने चाव और खुशी से पानी का पहला झरना ढूँढा था, किस तरह काँपते हुए हाथों से मैंने चट्टानों के बीच से झिझकते हुए पानी को अपनी छोटी-छोटी अँगुलियों का सहारा देकर बाहर बुलाया था। और जब मैंने पहली बार उसे अपने चुल्लू में लिया तो पानी मेरे हाथों में यूँ काँप रहा था जैसे नई पकड़ी हुई चिड़िया बच्चे के हाथ में काँपती है।

फिर जब मैं उसे चुल्लू में भरकर अपनी ज़बान तक ले गया तो मुझे याद है मेरी काँपती हुई खुशी कैसे कड़वे अचम्भे में बदल गई थी। पानी ने ज़बान पर जाते ही मुझे बिच्छू की तरह डंक मारा और उसके ज़हर ने मेरी रूह तक को कड़वा कर दिया। मैंने पानी थूक दिया और फिर किसी नये झरने की खोज में चल दिया। लेकिन नमक के पहाड़ पर मुझे आज तक मीठा सोता न मिला।

इसलिए जब नदी सूखने लगी तो मीठे सोते की याद ने मुझे

व्याकुल कर दिया और मैंने दादी अम्मां से पूछा, "दादी अम्मा, यह नमक के पहाड़ का पानी कड़वा क्यों है ?"

दादी अम्मा ने कहा, "यह तो एक दूसरी कहानी है।"

"तो सुनाओ।"

"नहीं, अब सो जाओ।"

"नहीं, सुनाओ, नहीं तो हम रोयेंगे।"

"अच्छा बाबा, सुनाती हूँ, मगर अब तुम चीखोगे नहीं।"

"नहीं।"

"और नाही बीच-बीच में टोकोगे।"

"नहीं।"

"तो अच्छा सुनो। यह तुम उस तरफ़ नमक की पहाड़ी जो देखते हो यह पुराने जमाने में एक औरत थी। जो उस पहाड़ी की बीवी है जहाँ आजकल मीठे पानी के झरने हैं।"

"फिर।"

"फिर एक रोज़ देवों में बड़ी जंग छिड़ी और यह सामने का पहाड़ यानी इस स्त्री का पति लड़ाई में भर्ती हो गया, और अपनी बीवी को पीछे छोड़ गया। और उसे कह गया कि उसके आने तक कहीं न जाय और न किसी से बात करे। केवल अपने घर का खयाल करे।"

"अच्छा।"

"हाँ, फिर कई साल तक बीवी अपने देव पति की बाट जोहती रही। लेकिन उसका पति युद्ध से न लौटा। अन्त में एक दिन उसके घर में एक सफ़ेद देव आया और उससे प्रेम करने लगा।"

"प्रेम क्या होता है ?"

दादी अम्मां रुक गयीं, बोलीं, "तुमने फिर टोका"

मैंने दिल में सोचा, दादी अम्मा यदि रूठ गयीं तो बाकी कहानी सुनने को नहीं मिलेगी और कहानी अब दिलचस्प होती जा रही है, इसलिए उसे चुपके-से सुन लेना चाहिए, प्रेम का मतलब बाद में पूछ

लेंगे, इसलिए मैंने जल्दी से सोचकर दादी अम्मा से कहा—

"अच्छा, अच्छा, दादी अम्मा, आगे सुनाओ, अब नहीं टोकेंगे"

दादी अम्मा बड़ी रुखाई से इस तरह नाराज़ होकर बोलीं जैसे उन्हें कहानी का आगे आने वाला हिस्सा पसन्द नहीं है।

कहने लगीं, "होना क्या था, पश्चिमी पहाड़ की बीवी बेवफ़ा निकली। जब उसे सफेद देव ने झूठ-मूठ यक़ीन दिलाया कि उसका पहला पति देवों के युद्ध में मारा गया है, उसने सफेद देव से शादी करली।"

"देवों की जंग क्यों हुई थी?" मेरे मुँह से अनजाने निकल गया।

"तूने फिर टोका" दादी अम्मा बहुत नाराज़ होकर बोलीं, "चल अब आगे नहीं सुनाऊँगी।"

"नहीं, दादी अम्मा · मेरी अच्छी दादी अम्मा, अच्छा अब बिलकुल नहीं टोकूँगा ..." मैंने मिन्नत करते हुए कहा।

"फिर"

"फिर एक दिन बहुत सालों के बाद एक बूढ़ा देव इस घाटी में आया। यह उसी औरत का पहला पति था। जब उसने अपनी बीवी को सफेद देव के साथ देखा तो उसे बहुत गुस्सा आया और उसने कुल्हाड़ा लेकर सफेद देव और अपनी बीवी को क़त्ल कर दिया। जब से इन दोनों पहाड़ों को बड़े पीर की बद दुआ है और ये दोनों सिल-पत्थर हो गये हैं। सामने वाले पहाड़ का पानी इसलिए मीठा है क्योंकि इसे अपनी बीवी से सच्ची मुहब्बत थी। इसके सामने वाली पहाड़ी का पानी खारा है और उसमें नमक है क्योंकि वह औरत है और अपनी बेवफ़ाई पर हर वक्त रोती रहती है और जब उसके आँसू सूख जाते हैं तो नमक के डले बन जाते हैं जिन्हें हर रोज तुम्हारा बाप पहाड़ के अन्दर जाकर खोदकर निकालता है।"

"फिर?"

"फिर कहानी ख़त्म।"

कहानी ख़त्म हो गई और मैं भूल गया मैंने क्या सवाल किया था, मुझे क्या जवाब मिला, बस मैंने कहानी सुन ली, शान्ति का साँस लिया और पलक झपकते ही सो गया। सोते-सोते मेरी आँखों के सामने नमक की खान का दृश्य आया जहाँ मेरे अब्बा काम करते थे, जहाँ जवान होकर मुझे काम करना पड़ा और जहाँ पहली बार मैं अपनी अम्माँ के साथ अपने अब्बा का खाना ले कर गया था। उफ़, कितनी बड़ी खानें थीं वे! चारों तरफ नमक के पहाड़, नमक के स्तम्भ! नमक के आइने नमक की दीवारों में लगे हुए थे। एक जगह नमक की बड़ी झील थी जिसके चारों तरफ नीले रंग की दीवारें थीं और छत भी नमक की थी जिसमें कतरा-कतरा कर नमक का पानी रिसता था और नीचे गिरकर झील बन गया था। और मुझे एकाएक ख़याल आया ये उस औरत के आँसू हैं जो आज बड़े पीर की बददुआ से नमक का पहाड़ बन चुकी है।

मेरे अब्बा उस झील को देखकर बोले, "यहाँ इतना पानी है फिर भी पानी कहीं नहीं मिलता। दिन-भर नमक की खान में काम करते-करते सारे शरीर पर नमक की पतली-सी झिल्ली चढ़ जाती है, इसे खुरचो तो नमक चूरा-चूरा होकर गिरने लगता है। उस वक्त कितना पागलपन होता है, जी चाहता है कहीं से मीठे पानी की झील मिले और आदमी उसमें गोते लगाये।"

पानी! पानी!

पानी सारे गाँव में कहीं नहीं था। पानी नमक के पहाड़ पर नहीं था। पानी था तो सामने पहाड़ पर जिसकी मुहब्बत न बेवफ़ाई नहीं की थी या पानी फिर खेल नदी में था लेकिन यह नदी भी साल में छः महीने गुम रहती थी और फिर आखिर एक दिन यह नदी बिल्कुल ही गुम हो गई और आज तक इसकी तह के नीले पत्थर और सूखी रेत और इसके किनारे-किनारे चलने वाली औरतों के निराश कदम इसकी राह देखते हैं लेकिन यह मेरे बचपन की कहानी नहीं है, यह मेरे लड़कपन की कहानी है, जब मेरे गाँव से बहुत दूर इन पहाड़ी सिलसिलों के दूसरी

तरफ़ सैकड़ों मील लम्बी जागीर के राजा अकबर अली खाँ ने हमारे देहात वालों की मर्जी के विरुद्ध खेल नदी का बहाव मोड़कर अपनी जागीर में कर लिया। हमारी तलहटी और आस-पास के बहुत-से इलाके को सूखा बंजर और वीरान कर दिया। उस वक्त हम नदी के किनारे हमारा गाँव और इस घाटी के दूसरे बहुत-से गाँव यूँ परेशान हो गये जैसे बहुत-से बच्चे एकाएक अपनी माँ के मर जाने से यतीम हो जाते हैं। इस तरह हमारे लिए खेल नदी भी मर गई और इसका पानी भी मर गया और हमारे लिए एक कड़वी याद छोड़ गया।

मुझे याद है कि उस वक्त गाँव वालों ने दूसरे गाँव वालों से मिल-कर सरकार को एक अर्जी दी थी। राजा अकबर अली खाँ के जुल्म के विरुद्ध और सरकार से अपनी खोई हुई नदी माँगी क्योंकि नदी तो घर की औरत की तरह है। वह घर में पानी देती है, खेतों में काम करती है, हमारे कपड़े धोती है, शरीर को साफ़ रखती है, नदी के गीत उसके बच्चे हैं जिन्हें वह लोरी देते हुए, थपकते हुए पश्चिम के झूले की ओर ले जाती है। पानी के बिना हमारा गाँव बिल्कुल ऐसा था जैसे घर-वर की औरत के बगैर। गाँव वालों को बिल्कुल ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने उनके घर से उनकी लड़की भगा ली हो। वही गम था, वही गुस्सा था, वही तेवर थे, वही मरने-मारने के अन्दाज़ थे।

लेकिन राजा अकबर अली खाँ चकवाल के इलाके का सबसे बड़ा जमींदार था। सरकार के अफ़सरों के साथ उसका गहरा मेल था। नमक की खान का ठेका भी उसके पास था। नतीजा यह हुआ कि गाँव वालों को उनकी नदी वापस न मिली, उल्टा हमारे बहुत-से गाँव वाले जो नमक की खान में काम करते थे, बाहर निकाल दिये गए। उनका कसूर केवल यह था कि उन्होंने अपने गाँव के भगाये गए पानी को वापस बुलाने की हिम्मत की थी। मुझे याद है उस दिन अब्बा काँपते-काँपते घर में आये थे, उनके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था और वह बार-बार अपने कानों को हाथ लगाकर कहते, "तोबाह! तोबाह!

कैसी गलती हो गई। वह तो अल्लाह का करम था जो मैं बच गया वरना राजा साहब तो मुझे भी निकाल देते। मैं तो अब कभी राजा जी के खिलाफ अर्जी न दूँ चाहे वह पानी तो क्या मेरी लड़की ही क्यों न भगाकर ले जाएँ। तोबाह ! तोबाह !!"

पर यह भी सच है कि हमारे गाँव में पानी की इज्जत लड़की की इज्जत की तरह बहुत मूल्यवान् है। पानी जो जीवन देता है, पानी जो रगों में लहू बनकर दौड़ता है, पानी जो मुँह धोने को नहीं मिलता, पानी जिसके न रहने से हमारे कपड़े भरे और मैले रहते हैं, सर में जूँएँ, जिस्म पर पसीने की धारियाँ और रूह पर नमक जमा रहता है। यह पानी तो सोने से अधिक कीमती है और लड़की से ज्यादा सुन्दर है। और इसकी कद्र और कीमत हमारे गाँव वालों से पूछिए, जिनकी जिन्दगी पानी के लिए लड़ते-झगड़ते गुजरती है। एक दफा सामने के पहाड़ के मीठे झरने से पानी लाने के लिए सरदार खाँ की बीवी सैदाँ और अयूब खाँ की बीवी आयशा दोनों आपस में लड़ पड़ी थीं हालाँकि दोनों इतनी गहरी सहेलियाँ थीं, कि हर वक्त इकट्ठी रहतीं, घर भी इनके साथ-साथ थे, झरने पर भी पानी इकट्ठी लेने जातीं। पानी दूर था, रास्ता अकेला था, इसलिए दोनों इकट्ठी जातीं। पहले एक फिर दूसरी पानी भरती, बारी-बारी वे दोनों एक-दूसरे का घड़ा उठाकर सिर पर रखतीं और फिर बातें करती हुई वापस चल पड़तीं। लेकिन आज जाने क्या हुआ, आज जाने दोनों को क्या जल्दी थी, एक कहती पानी पहले मैं भरूँगी, दूसरी कहने लगी, नहीं मैं भरूँगी, शायद इन्हें गुस्सा एक-दूसरे के खिलाफ नहीं था, शायद इन्हें गुस्सा इसलिए था कि यहाँ मीठे पानी का एक ही झरना था, वहाँ नदी के सूख जाने के बाद दूर-दूर से लोग पानी लेने के लिए आते थे, मुँह-अँधेरे ही औरतें घड़ा लेकर चल पड़तीं, जब यहाँ पहुँचतीं तो या तो एक लम्बी लाइन पहले से ही मौजूद रहती या झरने के मुँह से एक ऐसी पतली-सी धार को निकलते देखतीं जो आधे घंटे में मुश्किल से एक घड़ा भरती

थी। और फिर तीन कोस का आना-जाना कयामत से कम न था। लड़ाई का कारण कुछ भी हो, असल लड़ाई पानी की थी। दोनों औरतों ने देखते-देखते एक-दूसरे के चेहरे नोच लिए, घड़े तोड़ दिए, कपड़े फाड़ डाले, और रोती हुई अपने-अपने घरों को गईं। तब सैदाँ ने सरदार खाँ को भड़काया और आयशाँ ने अयूब खाँ को। और दोनों के पति गुस्से से बेताब हुए कुल्हाड़ियाँ लेकर बाहर निकल पड़े और इससे पहले कि लोग आकर बीच-बचाव करें दोनों ने कुल्हाड़ियों से एक-दूसरे को समाप्त कर दिया। शाम होते-होते दोनों पड़ोसियों का जनाज़ा निकल गया। हमारे गाँव के कब्रिस्तान की बहुत-सी कब्रें पानी ने बनाई हैं।

मेरे लड़कपन के ज़माने में जब ये दोनों कत्ल हुए उस वक्त सामने के पहाड़ पर यही एक मीठे पानी का झरना था। लेकिन बाद में जब और बड़ा हुआ तो यहाँ एक और झरना भी निकल आया। इस नये झरने की कहानी भी बड़ी अजीब है। यह तब की कहानी है जब हमारे पठुहार में सख्त काल आया था और गर्मी के कारण इलाके के सारे नदी-नाले और कूँए सूख गए थे। केवल कहीं-कहीं इन झरनों में पानी बाकी रह गया था जो पहाड़ों की खोहों में थे। जहाँ सूरज की रोशनी का गुजर न था। उन दिनों हमारे घरों में औरतें रात के दो बजे ही उठकर चल देतीं और झरने के नीचे हमेशा घड़ों की एक लम्बी-सी कतार दिखाई देती। एक लम्बी खाली घड़ों की कतार जिसमें प्यास से बिलखते बच्चों की आवाज़ आती थी।

तब बड़े-बड़े लोग नेकी और खुदाई में अविश्वास करने लगे। और उन लोगों में सबसे बुरा काम जैलदार मलिक खाँ ने किया। उसने थानेदार अफ़ज़ल अली से मिलकर इस झरने पर पहरा लगा दिया और फिर तहसीलदार गुलाम अली से मिलकर झरने के इर्द-गिर्द की सारी जमीन खरीद कर रातोंरात उस पर चारदीवारी बाँध दी। और चार-दीवारी के बाहर ताला लगा दिया। अब इस झरने से कोई आदमी

बिना आज्ञा के पानी न ले सकता था क्योंकि यह झरना अब जैलदार की सम्पत्ति था और जैलदार ने झरने से पानी ले जाने वाले घड़ों पर अपना टैक्स रख दिया। एक घड़े पर एक आना, दो घड़ों पर दो आने.. .

तब सारे गांव में इस ज़ुल्म के विरुद्ध शोर मच गया। लेकिन पुलिस और सरकार जैलदार मलिक खाँ के पीछे थे, कानून भी उसकी तरफ़ था, और पानी भी उधर था। इसलिए गाँव के सारे जवान, बूढ़े और बच्चे जमा होकर मेरे अब्बा के पास आये और बोले, "चचा खुदा-बख्श, अब तुम्हीं हमें इस मुसीबत से छुटकारा दिलवा सकते हो।"

"वह कैसे ?" मेरे अब्बा ने हैरान होकर पूछा।

सफेद दाढ़ी वाले बूढ़े हाकिम खाँ ने कहा, "याद है यह मीठे पानी का चश्मा जो अब जैलदार मलिक खाँ का हो गया, यह झरना भी तुमने खोजा था। क्या तुम दूसरा चश्मा नहीं ढूँढ सकते ? आखिर इस पहाड़ के अन्दर इसके सीने में और भी तो कहीं मीठा पानी होगा जो इन्सान को जीवन अमृत दे सकता है। खुदाबख्श, तुम हम सबसे सयाने हो, अपनी अक्ल दौड़ाओ, हम तुम्हारे साथ दौड़ने, मरने को तैयार हैं। हमारे गाँव में पानी नहीं है और अब पानी चाहिए।"

मेरा अब्बा चारपाई पर उकड़ूँ बैठा था, उसी वक्त अल्लाह का नाम लेकर खड़ा हो गया। सारा गाँव उसके साथ था, पहाड़ पर चढ़ाई थी और तलाश पानी की थी, फ़रहाद के पहाड़ काटने से पानी की तलाश मुश्किल है। यह बात मुझे उस रोज़ मालूम हुई क्योंकि पानी सामने नहीं होता, वह तो एक छलावे की तरह पहाड़ की सलवटों में खो जाता है, पानी खानाबदोश है, आज यहाँ, कल वहाँ। पानी एक परदेसी है जिसकी मुहब्बत का कोई विश्वास नहीं। पानी का अस्तित्व उस सुकुमार गन्ध की तरह है जो तेज़ धूप में उड़ जाती है। इस पहाड़ के इलाके में जहाँ औरतें वफ़ादार और लज्जाशीला हैं, पानी बेवफ़ा और हरजाई है। वह कभी किसी एक का होकर नहीं रहता।

कभी एक ठिकाने पर नहीं मिलता। कभी एक झरने में नहीं रहता। वह हमेशा यहाँ से वहाँ, एक जगह से दूसरी जगह, एक देश से दूसरे देश में घूमता रहता है, पासपोर्ट के बगैर। ऐसे हरजाई की तलाश के लिए एक कुदाल नहीं एक शीशा चाहिए जिसके सामने एक पहाड़ का दिल इस तरह हो जैसे खुली किताब। मेरे गाँव वालों ने कुछ समझ-कर मेरे बाप को इस काम के लिए चुना था।

उस रोज़ हम दिन-भर उस ऊँचे पहाड़ की खाक छानते रहे। हमने कहाँ-कहाँ इस पानी को तलाश नहीं किया। बेरियों की घनी छाँव में, चट्टानों की गहरी दरारों में, काली डरावनी खोहों में, जंगली जानवरों की गुफाओं में। पानी की तलाश में हमने सारे पुराने झरने खोद डाले। लेकिन उनका खोदना ऐसा ही था जैसे आदमी ज़िन्दगी की तलाश में कब्रें खोद डाले। पानी कहीं नहीं मिला। एक चोर की तरह उसने जगह-जगह अपने झूठे सुराग छोड़े लेकिन आखिर को वह हमेशा चकमा देकर कहीं गुम हो जाता था। जाने प्रकृति के किस सीने के अन्दर कहीं वह कहीं गहरी खोह में बैठा हुआ अपने चाहने वालों पर हँस रहा था।

लेकिन गाँव वालों ने आस 'नहीं छोड़ी वे सारा दिन मेरे अब्बा के पीछे-पीछे पानी की खोज करते रहे। आख़िर जब शाम होने को आई तो मेरे अब्बा ने पसीना पोंछकर एक ऊँचे टीले पर खड़े होकर उधर नज़र दौड़ाई जिधर सूरज डूब रहा था। एकाएक इस अस्त होते हुए सूरज की रोशनी में चट्टानों की एक गहरी दरार में दूब की हरियाली नज़र आई और कहते हैं जहाँ दूब की हरियाली होती है वहाँ पानी ज़रूर होता है। दूब पानी का झंडा है। और पानी एक घूमने वाली कौम है। पानी जहाँ जाता है अपना झंडा अपने साथ ले जाता है।

एक चीख़ मारकर जल्दी से मेरे अब्बा उस तरफ लपके जहाँ दूब उगी थी। गाँव वाले उनके पीछे-पीछे भागे। जल्दी-जल्दी में मेरे अब्बा ने अपने नाखूनों ही से जमीन को कुरेदना शुरू कर दिया। ज़मीन जो ऊपर से सख्त थी, नरम होती गई, गीली होती गई, आख़िर ज़ोर से

पानी की एक धार ऊपर आई और सैकड़ों सूखे हुए गलों से खुशी की आवाज़ निकली, "पानी! पानी!"

अब्बा ने कांपते हुए हाथों से चुल्लू में पानी भरा। सारी निगाहें अब्बा के चेहरे पर थीं। सैकड़ों दिल धड़क रहे थे, या अल्लाह! पानी मीठा हो! या अल्लाह! पानी मीठा हो!

अब्बा ने पानी चखा।

"पानी मीठा है" अब्बा ने खुशी से कहा।

गाँव वाले ज़ोर से चिल्लाये, "पानी मीठा है।"

सारी घाटी में आवाज़ें गूँज उठीं, "पानी मीठा है! पानी मिल गया! पानी मीठा है!"

सारी घाटी में ढोल बजने लगे, औरतें गाने लगीं, जवान नाचने लगे, बच्चे शोर मचाने लगे। गाँव वालों ने जल्दी से झरने को फांदकर अपने घेरे में ले लिया। अब झरना उनके बीच था और वे उसके चारों ओर थे। वे उसे मुड़-मुड़कर इस तरह मुहब्बत-भरी नज़रों से देखते थे जैसे माँ नये पैदा बच्चे को देखकर खुश होती है।

वह रात मुझे कभी नहीं भूलेगी, उस रात को कोई आदमी गांव में वापस नहीं गया। उस रात सारे गांव ने झरने के किनारे जश्न मनाया। उस रात तारों की गोद की भूली हुई बेरियों के साये में, माओं ने चूल्हे सुलगाए, बच्चों को थपक-थपक कर सुलाया, उस रात कुंवारियों ने महक-महक कर गीत गाए, ऐसे गीत जो पानी की तरह निर्मल और सुन्दर थे, जिनमें जंगली झरनों का-सा सौन्दर्य था और जल प्रपातों जैसी तेज़ी थी। उस रात सब औरतें सुन्दर थीं और सारी धरती उपजाऊ थी। सारी जड़ें हरी थीं और सारे बीज प्रतीक्षा से बेकरार होकर फूट पड़े थे। ऐसी रात हमारे गांव में कब आई थी जब अब्बा खुदा-बख्श ने पानी ढूँढ निकाला था। पानी जो इन्सान के हाथों की मेहनत था, उसके दिल का प्यार था, आज पानी हमारे यहाँ इस तरह आया था जैसे बारात डोली लेकर आती है। वह नया झरना हमारे बीच

आज इस तरह हौले-हौले शरमीले अन्दाज़ में चल रहा था जैसे नई दुलहन झिझक-झिझक कर अजनबी आँगन में पाँव रखती है। उस रात मेरे एक हाथ में पानी था, दूसरे हाथ में बालो का हाथ था और आसमान पर तारे थे।

उस नये झरने के साथ मेरी जवानी की सबसे सुन्दर यादें बँधी हैं। इस झरने के किनारे मैंने बालो से प्यार किया। बालो जिसका सौन्दर्य पानी की तरह अप्राप्य था, जिसे देखकर हमेशा ख्याल आता था कि जाने इस ज़मीन की गोद में कितने ही मीठे झरने छिपे हुए हैं, कितनी सुन्दर यादें जमी हुई हैं, ग्रीष्म ऋतु के कितने ही शोख, चमकते हुए फूल, पतझड़ों के कितने सुनहरे पत्ते, हेमन्त की साफ़ दूध धुली बर्फ़, बालो की मुहब्बत भी कितनी खामोश और चुपचाप थी। ज़मीन के नीचे बसने वाले पानी की तरह। वह रात के अन्धेरे में भोर से बहुत पहले इस झरने के किनारे आती थी जब यहाँ और कोई न होता मेरे सिवाय। मुझे देखकर उसके चेहरे पर मुस्कान की लहर फूट पड़ती जैसे अन्धेरे में ऊषा की लौ फैल जाती है। और घड़े को झरने की धार के नीचे रख देती, पानी घड़े से बातें करने लगता और मैं उससे। धीरे-धीरे बातें करते हुए घड़ा भर जाता और हमारे दिल खुशी से छलक उठते और हमारे जाने बिना ही कहीं दूर से सुबह यूँ धीरे-धीरे चलते हुए आती जैसे सुबह का झोंका सन्तरे के फूलों की सी अँगुलियाँ लिए चेहरों पर से गुज़र जाता है। और हम चौंककर उठ खड़े होते और अचरज से इधर-उधर देखने लगते और फिर मैं उसका घड़ा उठाकर उसके सिर के ऊपर रखी हुई लाल पट्टी पर रखता और वह मुस्कराकर पलट कर और घूमकर ढलवान पर से गुज़र जाती और मैं उसकी तरफ देखता रहता। उस वक्त भी देखता रहता जब दूसरी औरतें मेरी ओर देखकर मुस्कराने लगतीं और जैसे वह दिन याद आता जब मैंने दादी अम्मा से पूछा था, "दादी अम्मा, प्रेम किसे कहते हैं?"

और फिर उस झरने के किनारे मुझे वह रात भी याद है, जब मैं

खान में काम करता था और दिनभर थककर घर लौटता था और उसी थकन से चूर होकर यूँ सो जाता था कि सुबह ही आँख खुलती। कई रोज़ से मैं बालो से झरने पर मिलने न गया था। मगर कोई बेकरारी न थी। वह साथ के घर ही में तो थी। उन्हीं दिनों में उसके चचा का लड़का ग़ज़नफ़र भी आया और चला भी गया। लेकिन मुझे उससे मिलने की भी फ़ुरसत न मिली क्योंकि खान में मैं नया-नया नौकर हुआ था और काम सीखने का बहुत शौक था और यह तो सबको मालूम है कि नमक की खान में जाकर हर कोई नमक हो जाता है।

एक रात को बालो ने मुझे कहा, कि मैं रात को दो बजे झरने पर उसे मिलूँ। मैंने कहा, मैं बहुत थका हुआ हूँ। वह बोली जरूरी काम है आना होगा। इसलिए मैं गया।

दो बजे के वक्त आधी रात में झरने पर कोई नहीं था हम दोनों के सिवाय। मैंने उससे पूछा, "क्या बात है ?"

वह देर तक चुप रही। फिर मैंने पूछा, "भई बताओ, आखिर क्या बात है ?"

वह बोली, "मैं गाँव छोड़कर जा रही हूँ।"

मेरा दिल धक से रह गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे झरना बहता-बहता रुक गया।

मेरे गले से आवाज निकली, "क्यों ?"

"मेरी शादी तय हो गई है।"

"किससे ?"

"चचा के लड़के के साथ, जो लड़ाई से वापस होकर यहां आया था। वह चकवाल में है, सूबेदार है।"

"और तुम जा रही हो ?" मैंने कड़वे होकर पूछा।

"हाँ"

वह चुप हो गयी, मैं भी चुप रहा, सोच रहा था उसे अभी जान से मार दूँ या शादी की रात कत्ल करूँ।

थोड़ी देर रुककर वालो फिर बोली, "सुना है चकवाल में पानी बहुत होता है। सुना है, वहां बड़े-बड़े नल होते हैं जिनमें जब चाहो टूटी घुमाकर पानी निकाल लो।"

उसकी आवाज खुशी के मारे काँप रही थी। वह शायद कुछ और भी कहती लेकिन शायद मेरी आरजूओं का ख्याल करके चुप हो गई।

मैंने उसके बिलकुल निकट आकर उसे दोनों कन्धों से पकड़ लिया और गौर से उसकी आँखों की तरफ देखा। उसने एक पल मेरी ओर देख कर आँखें झुका लीं। उसकी निगाहों में मेरे प्यार से इन्कार नहीं था बल्कि पानी का इकरार था। मैंने धीरे से उसके कन्धे छोड़ दिए और अलग होकर खड़ा हो गया। एकाएक मुझे लगा कि प्यार सच्चाई, उदारता और भावना की गहराई के साथ-साथ थोड़ा सा पानी भी मांगता है। वालो की झुकी हुई निगाहें एक हत्यारी शिकायत को स्वीकार रही थीं जैसे कह रही हों जानते हो हमारे गांव में कहीं पानी नहीं मिलता, यहां मैं दो-दो महीने नहा नहीं सकती, मुझे अपने आप से, अपने शरीर से नफरत हो गयी है।

वालो चुपचाप ज़मीन पर झरने के किनारे बैठ गई। मैं इस अँधियारी में भी उसकी आँखों के भीतर उस प्यार के सपने को देख सकता था जो गन्दे बदबूदार शरीरों पिस्सुओं, जूँओं और खटमलों की नारी सड़ी हुई छींटों में लिपटा हुआ प्यार न था, इस मुहब्बत में नहाए हुए शरीरों, धुले हुए कपड़ों और नई पोशाक की महक आती थी। मैं बिलकुल मजबूर और बेबस होकर एक तरफ बैठ गया।

रात के दो बजे।

वालो और मैं।

दोनों चुपचाप।

कभी ऐसा सन्नाटा जैसे सारी दुनिया खाली है। कभी ऐसी खामोशी जैसे सारे आँसू सो गये हैं। वालो हौले-हौले सुराही में पानी भरती झरने के किनारे बैठी हुई

रही। आहिस्ता-आहिस्ता पानी सुराही में भरता हुआ बालो से बातें करता रहा और मैं उसे कुछ कहता रहा, पानी की बातें इन्सान की सबसे सुन्दर यादें हैं।

बालो चली गई।

जब बालो चली गई तो मेरे मन में बचपन की वह कहानी आई जब मुहब्बत रोई थी और आँसू नमक के डले बन गये थे। उस वक्त मेरी आँखों में एक आँसू भी न था लेकिन दिल के अन्दर नमक के कितने ही बड़े डले इकट्ठे हो गये थे। मेरे दिल के अन्दर नमक की एक पूरी खान मौजूद थी। नमक की दीवारें, स्तम्भ, गार और किनारे, पानी की पूरी झाल, मेरे दिल और दिमाग और भावनाओं पर नमक की एक पतली-सी झिल्ली चढ़ गई थी और मुझे यकीन हो चला था कि अगर मैं अपने शरीर को कहीं से भी खुरचूँगा तो आंसू ढलक कर बह निकलेंगे, इसलिए मैं चुपचाप बैठा रहा, बिना कुछ सोचे बिना हिले डुले, पत्थर-सा। और जब बालो उठी उस वक्त भी बैठा रहा और जब वह मेरी ओर देख-देखकर ढलवान पर मुड़ गई उस वक्त भी चुपचाप बैठा रहा क्योंकि मेरे पास पानी नहीं था और बालो पानी के पास जा रही थी।

जिस रात बालो का ब्याह गज़नफ़र से हुआ उस रात मैंने एक अजीब सपना देखा। मैंने देखा कि हमारी खोई हुई नदी हमें वापस मिल गई है और नमक के पहाड़ पर मीठे पानी के झरने उबल रहे हैं। और हमारे गाँव के बीच में एक बहुत बड़ा पेड़ खड़ा है। यह पेड़ सारे-का-सारा पानी का है। इसकी जड़ें, तने, शाखें, फूल, फल, पत्तियाँ सब पानी की हैं और इस पेड़ की टहनियों से, पत्तों से पानी बह रहा है और यह पानी हमारे गाँव की बंजर धरती में जीवन-भर रहा है, और मैंने देखा किसान हल जोत रहे हैं, औरतें कपड़े धो रही हैं, खान के मजदूर नहा रहे हैं और बच्चे फूलों के हार लिए पानी के पेड़ के चारों ओर नाच रहे हैं। और बालो साफ-सुथरे कपड़े पहने मेरे कन्धे से लगी

मुझसे कह रही है।

"अब हमारे गाँव में पानी का पेड़ उग आया है। अब मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी।"

यह बड़ा ही अजीब स्वप्न था। लेकिन मैंने जब अपने अब्बा को सुनाया तो वह मारे डर के काँपने लगे। बोले, "तुमने यह सपना मेरे सिवाय किसी दूसरे को तो नहीं सुनाया।"

मैंने कहा, "नहीं अब्बा, पर आप डर क्यों गए हैं? यह तो एक स्वप्न है।"

वह बोले, "अरे सपना तो है, मगर यह एक लाल सपना है।"

मैंने हँसकर कहा, "नहीं अब्बा, पेड़ मैंने जो स्वप्न में देखा वह लाल नहीं था, उसका रंग तो बिल्कुल ऐसा था जैसे पानी का होता है। वह पानी ही का पेड़ था। उसका तना, टहनियाँ, पत्ते, सब पानी के थे। हाँ, उस पेड़ पर फूलों की जगह कट-ग्लास की चमकती हुई सुराहियाँ लगी थीं और उनमें पानी बच्चों की हँसी की तरह चमकता था और फव्वारों की तरह ऊँचा जाकर नीचे गिरता था।"

वह बोले, "कुछ भी हो यह भी बड़ा भयानक सपना है। अगर पुलिस ने कहीं से सुन लिया या तुमने किसी से इसकी बात कर दी तो वे तुम्हें इस तरह पकड़कर ले जाएँगे जिस तरह वे उन मज़दूरों को पकड़कर ले गये थे जिन्होंने हमारे गाँव की नदी को वापस लाना चाहा था। इसलिए ठीक यही है कि तुम इसकी बात किसी से न करो। इसे भूल जाओ। जैसे तुमने यह सपना कभी न देखा था। क्योंकि इसकी चर्चा करने से कुछ न होगा। सूखी नदी हमेशा सूखी रहेगी और प्यासे सदा प्यासे रहेंगे।"

मुझे अपने अब्बा की आवाज की निराशा और नाउम्मीदी आज तक याद है। मुझे यह भी याद है कि शुरू शुरू में इसकी चर्चा मैंने किसी से नहीं की लेकिन जब कुछ दिन बीत गये तो मैंने डरते डरते अपनी खान के कुछ मज़दूर साथियों से अपने स्वप्न की बात की। वे

मेरा सपना सुनकर डरने के बदले हँसने लगे और जब मैंने उनसे पूछा कि इसमें हँसने की क्या बात है तो उन्होंने कहा भला, इसमे डरने की कौनसी बात है। "यह स्वप्न तो बहुत अच्छा है और यहाँ खान मे हर एक को आ चुका है।"

"क्या सच कहते हो? वही पानी का पेड़?"

"हाँ! हाँ! वही पानी का पेड गाँव में और एक ठंडे मीठे पानी का झरना हर नमक की खान में"

"घबराओ नहीं। एक दिन यह स्वप्न अवश्य पूरा होगा।"

पहले मुझे इस बात पर विश्वास नहीं हुआ लेकिन अपने साथियों के साथ काम करते अब मुझे पूरा भरोसा हो चला है कि हमारा स्वप्न अवश्य पूरा होगा। एक दिन हमारे गाँव में पानी का पेड़ ज़रूर लगेगा और जो जाम खाली हैं वे भर जाएँगे और जो कपडे मैले है वे धुल जाएँगे और जो दिल तरसे हुए हैं वे खिल जाएँगे और सारी जमीनें और सारे प्यार और सारे वीराने और सारे मरुथल हरियाली से झूम उठेंगे।

अमरीका से आने वाला हिन्दुस्तानी

एक दिन की बात है।

मैं चर्चगेट स्टेशन से उतरकर रिट्ज होटल की तरफ फुटपाथ पर सिर झुकाए चला जा रहा था कि एकाएक किसी ने बिलकुल मेरे पास आकर जोर से चिल्लाकर कहा, "हॉय किड"।

मैं जमीन से दो फुट ऊपर उछल गया। उछलने के बाद जो नीचे गिरा हूँ तो मेरे कदम फुटपाथ पर नहीं थे बल्कि चने बेचने वाले की टोकरी में। दूसरे पल टोकरी औंधी हो गई और चने सड़क पर फैल गए और चने वाला मुझे गालियाँ देने लगा। अभी मैं मुड़कर देख भी न पाया था कि इतनी ऊँची आवाज में कौन चिल्ला रहा है कि किसी ने जोर से मेरी पीठ पर हाथ मारकर कहा, "हॉय सकर"

अब जो मैं गुस्से में घूमकर देखता हूँ तो एक नौजवान नीले रंग की शार्क पतलून पर गुलाबी रंग की बुशर्ट पहने जिस पर हरे रंग के तरबूज बने थे मेरी ओर देखकर हँस रहा था। मैं इस तरह गुस्से में था कि कुछ क्षणों तक उसे नहीं पहचाना। मेरे गुस्से का अनुचित लाभ उठाते हुए उसने नाक में गुनगुनाते हुए फिर कहा, "डोन्ट यू नो मी! जगमोहनलाल कापड़या।"

एकाएक मैंने उसे पहचान लिया। "अरे" मेरे मुँह से निकला,

"अरे लोंचड तुम हो !" मैं खुशी से उसमे हाथ मिलाते हुए बोला, "जगमोहन लाल कापडया !"

"हूँ"

यहाँ हम सब उस नौजवान को बडे प्यार से लोंचड कहते थे। घर वाले जग या जग जग। यहा तक कि उसकी पत्नी भी उसे जगजी कह कर पुकारती थी जो आप समझ जाएँगे लोंचड से बहुत दूर नहीं है। खैर मैने अपने गुस्से को दूर करते हुए उससे पूछा,

"कोई तीन साल से तुम्हे नहीं देखा। कहां थे तुम ?"

"स्टेट्स मे"

(अमरीका से आने वाला हर आदमी अमरीका को स्टेट्स कहकर पुकारता है)

"वहा क्या करने गये थे ?"

"होटल मे चलो सब बताऊँगा। ओल्ड पार्क मे ठहरा हूँ।"

हम दोनो ओल्ड पार्क की ओर चलने लगे इतने में चने वाले ने कहा, "अजब शान खुदाई है"

"क्या बात है भाई" मैने बडी नर्मी से चने वाले से पूछा।

"अरे जाओ। आपने मेरी टोकरी तोड दी, मेरे चने जमीन पर बिखेर दिए। मेरे कोयलों की हँडिया लुडका दी, अब पूछते हो क्या बात है ?" चने वाला बाँहे हिलाते हुए बोला।

लोंचड ने अपनी पतलून की जेब का जिप खोला और उसमें से पाँच रुपये का नोट निकालकर चने वाले को दिया। चने वाला बडे गौर से पाँच रुपये के नोट को देखने लगा कि शायद इस नोट में भी कहीं कोई जिप लगा हो। फिर अच्छी तरह तसल्ली करने के बाद उसने नोट जेब में डाल लिया और जब हम आगे चले गये तो हमारी तरफ जोर से चिल्लाकर कहने लगा, "अजब शान खुदाई है।"

जब होटल के कमरे में पहुँचकर हम आराम से बैठ गए तो मुझे उसे अच्छी तरह देखने का मौका मिला। वह सचमुच आगे से सेहतमन्द

हो गया है और मोटा भी। और अब वह बहुत तेज़-तेज़ बातें करने का आदी हो गया था। इससे पहले जब तक वह हिन्दुस्तान में था तो सीधे-सादे ढंग में गले से या मुँह से बातें करता था मगर अब ऐसा मालूम होता है कि प्रत्येक वाक्य जो वह बोल रहा है वह गले से निकलकर नाक की नालियों में घुस जाता है और वहाँ से घूमता हुआ नथुनों के रास्ते बाहर निकलता है। इससे वाक्य के सफर की ऐसी गोलाइया पैदा हो जाती हैं जो जबान को एक नया रूप बल्कि कई बार वाक्यों को भी बिलकुल नये अर्थ दे देती हैं। मैं बहुत देर तक उसकी बातें बल्कि उसकी बातों की गोलाइयाँ सुनता रहा। यह ध्यान रहे बिना कि इन गोलाइयों के अन्दर क्या है। इस बीच में मुझे उसका वह जमाना याद आया जब जगमोहन और हम मन्टगोमरी के एक स्कूल में पढ़ा करते थे और जब जगमोहन एक बड़ी पगड़ी और एक तहमद बाँधे स्कूल में पढ़ने आया करता था और सब लोग उस पर हँसा करते थे और नटखट बच्चे उसकी ओर उँगली उठा उठा कर कहते थे।

लौंचड दीन
बजाए बीन
तहमद मोटा
पगड़ी महीन

उस वक्त भी लोग जगमोहन को लौंचड कहा करते थे। इस वक्त मैं उसकी बातें सुनते-सुनते वही गीत जोर-जोर से गुनगुनाने लगा।

जगमोहन बातें करता-करता चुप हो गया, फिर कुछ देर के बाद शिकायत से बोला, "भई अब तुम मुझे लौंचड न कहो। अब तो मैं स्टेट्स से हो आया हूँ। ट्रेनिंग लेकर आया हूँ।"

"काहे की ट्रेनिंग लेकर आए हो?"

"तेल निकालने की ट्रेनिंग।"

"किसका तेल निकालने की?"

"काजू का तेल निकालने की ट्रेनिंग।"

"काजू से तेल यहाँ भी तो निकल सकता है ?"

"निकल सकता है। मगर अमरीका में बहुत अच्छा निकलता है।"

"ओ ओ !"

इसके बाद उसने बातचीत का ढंग बदलने के लिए मुझे वे चीज़ें दिखाईं जो वह अमरीका से लाया था। जूतों के दस-बारह जोड़े। इन जूतों में फीते की बजाय लोहे की एक महीन जंजीर जिसे ज़िप कहते हैं लगी हुई थी। जूता पहनकर जंजीर ऊपर खींच लेने से जूता पाँव में खुद-ब-खुद फिट हो जाता है। सामने पतलून में भी बटन के बदले ज़िप लगी हुई थी। कोट की जेबों में भी ज़िप लगी हुई थी। क़मीज़ों और स्वेटरों से लेकर जराबों तक में ज़िप लगी हुई थी। फिर उसने मुझे कैलेन्डर दिखाए जिनमें हर महीने के पेज पर एक नंगी अमरीकी औरत की तसवीर थी।

मगर मैंने अचरज से कहा, "भाई, इन औरतों की ज़िप कहाँ है ? ये तो बिलकुल नंगी हैं।"

उसने मुस्कराकर कैलेंडर को बन्द किया और फिर उसके ऊपर एक ज़िप चढ़ा दी और कहने लगा, "देखो, यह रही, अब कहो ? अमरीका शानदार देश है या नहीं ?"

"वाक़ई है ! लौंचड ! वहाँ जुराब से लेकर औरत तक हर चीज़ लोहे की जंजीर के साथ बँधी हुई है।"

"श्योर, श्योर !" जगमोहन बात को न समझते हुए भी सिर हिलाने लगा।

लौंचड हर बात में श्योर-श्योर और फाइन कहता था और जब कोई चीज उसे बहुत पसन्द आ जाती तो जोर से "हक्की" कहता।

इसलिए उसकी पतलूनें फाइन थीं और स्वेटर हक्की, उसकी कमीज़ फाइन थी और उसके बुश कोट हक्की, उसके जूते फाइन थे और उसकी टाइयाँ हक्की और हक्की से आगे कोई शब्द है तो इस कोरस का बुक्की है मगर कभी-कभी . . .

फिर लौंचढ की टाइयाँ बड़ी खूबसूरत थीं, वे दोहरी टाइयाँ थीं यानी सीधी भी पहनी जा सकती थीं और उलटी भी। इसके अतिरिक्त इन पर अजीब किस्म के चित्रादि बने हुए थे। कुछ टाइयाँ तो ऐसी थीं जो सम्भवत: ईरानी छींटों को काटकर तैयार की गई थीं, कुछ टाइयों पर पुराने गलीचों का धोखा होता था, कुछ टाइयाँ मालूम होता था बच्चों ने अपने हाथों से रंगी हैं, कुछ टाइयों की गाँठ इतनी मोटी आती थी कि मालूम होता था कि बस गदहे की गर्दन में बाँधने के लिए तैयार की गई है।

लौंचढ ने एक टाई मुझे दिखाई। इस पर एक क्रासवर्ड पजल बनी थी, दूसरी तरफ एक औरतों के सोने के कमरे के अन्दर एक औरत सो रही थी।

मैंने पूछा, "यह क्या है?"

वह बोला, "यह अक्ल की टाई है।"

"वह कैसे।"

वह बोला, "तुम बूझो।"

मैंने कहा, "मैं अमरीकी अक्ल का मालिक होता तो बूझ लेता। अब तुमको बताना पड़ेगा।"

वह बोला, "श्योर श्योर, देखो, यह टाई कहती है दिन को पजल सुलझाओ। रात को किसी के सोने वाले कमरे में घुस जाओ।"

"सुबहान अल्लाह, क्या अक्ल है।"

"और यह टाई देखो।"

यह एक दूसरी टाई थी। इसके एक तरफ पाइप में से धुआँ निकल रहा था, दूसरी तरफ दो ऊँची एड़ी के जूते थे। एक टाई के निचले हिस्से पर, दूसरा बिल्कुल ऊपर। दोनों एड़ियों में दस इंच का अन्तर होगा।

उसने कहा, "बूझो, क्या है?"

मैंने सोच-सोचकर कहा, "यह टाई कहती है तम्बाकू पियोगे तो

बीवी पीटेगी।"

"हा हा, हा हा" लौंचड हँसते हुए बोला, "तुम बिल्कुल गुंग-गाजा हो, एकदम गुंग-गाजा हो।"

मैंने गुस्से से कहा, "और तुम एकदम लौंचड हो, एकदम लौंचड।"

वह मेरी पीठ थपकते हुए बोला, "देखो, गुस्से में मत आओ। यह टाई शाम के वक्त पहनी जा सकती है। जब शराब पीने के लिए बार में जाओ तो इस पाइप वाले हिस्से को सामने रखो, शराब पिओ और पाइप सुलगाकर खूबसूरत लौंडियों की चमकती टाँगों की तरफ देखो और फिर जो पसन्द आ जाय तो टाई का हिस्सा बदलकर उसके साथ डान्स करो। डान्स, समझे, डान्स यानी एक एड़ी नीचे, एक एड़ी ऊपर, बीच में दस इंच का अन्तर। सांबा नाच की तरह। ह ह ह ह!"

इसके बाद उसने बुशकोट उतारकर एक अमरीकी कमीज पहन ली जिसके कालर एक-दूसरे से १७५° के कोण बनाते हुए अलग हो जाते थे, उनके बीच एक छोड़ तीन टाइयाँ लगाई जा सकती थीं मगर मेरे दोस्त ने उस वक्त सिर्फ वही ऊँची एड़ी और धुआँ निकालने वाली टाई पहनने पर ही गुजर की और चूँकि अब शाम हो चुकी थी और अभी बम्बई में शराबबन्दी नहीं हुई थी इसलिए वह मुझे अपने होटल के स्पेशल बार में ले गया।

वह बोला, "तुम क्या पिओगे?"

मैंने कहा, "सिर्फ व्हिस्की पिऊँगा।',

वह बोला, "क्या जंगली ड्रिंक है। इसे सिर्फ अंग्रेज या आधे अंग्रेज हिन्दुस्तानी पीते हैं। इससे तो यही अच्छा है कि तुम कोका-कोला पियो और चियुंगम खाओ।"

मैंने कहा, "गम तो मैं रोज़ खाता हूँ कोई नई बात बताओ।"

वह बोला, "बॉय ओ बॉय, आज तुम्हें एक नई अमरीकी कॉक्टेल पिलाता हूँ।"

इसके बाद वह अपनी मगरमच्छ की खाल की पेटी सहलाता हुआ

बारमैन के पास चला गया और न जाने उसे क्या अंट-संट शराबें मिलाने को कहता रहा। आख़िर जब पन्द्रह-बीस मिनट के बाद खुशी से हाथ मलता हुआ मेरे पास आया तो बेयरे ने दो जाम हमारे सामने लाकर रखे। इनमें भूरे रंग का तरल पदार्थ था जो शराब से ज्यादा घोड़े के पेशाब से मिलता था। उसके अन्दर अंजीर का एक दाना पड़ा था।

इस अमरीकी कॉकटेल का ज़ायका कड़वा, मीठा, बकबका और मतली पैदा करता था, ऐसा मालूम होता था कि यह कॉकटेल होनोलूलू में जंगली खोपड़े को सूअर के गोश्त में सड़ा कर तैयार की गई है। मैंने मुँह का मजा बदलने के लिए अंजीर का मेवा उठाकर मुँह में रख लिया। उफ, किस तरह तेज़, तीखा, तुर्श सिरके की तरह ज़बान को काटता हुआ था।

"अरे लौंचड, यह कॉकटेल है या तेज़ाब", मैंने झल्लाकर कहा।

मगर लौंचड़ बड़े मज़े से चुस्कियाँ ले-लेकर कॉकटेल पी रहा था और बातें करता जा रहा था। दो-तीन कॉकटेल पीने के बाद उसकी हालत अजीब हो गई और उसकी निगाहें बाररूम की कढ़ी हुई छत पर पड़ गईं। और वह अपने खयालों में खो गया।

"हाय, मुझे अमरीका के हॉट डॉग्ज (गर्म कुत्ते ?) याद आते हैं।"

" 'गर्म कुत्ते' क्या होते हैं ? अजीब सा नाम है" मैंने पूछा।

वह बोला, "अमरीका में 'गर्म कुत्ते' एक तरह के कबाब को कहते हैं।"

"और गर्म कुत्तों को अमरीका में क्या कहते हैं ?" मैंने पूछा।

उसने मुझे घूर के देखा और फिर निगाहें छत पर गाड़ दीं।

"हाय, मुझे हैम्बर्गर्ज़ याद आते हैं।"

"ये क्या बला है ?" मैं पूछे बिना न रह सका।

लौंचड़ मतलब समझाने लगा। दस मिनट की व्याख्या के बाद मुझे मालूम हुआ कि हैम्बर्गर में तली हुई मछलियाँ बेची जाती हैं।

मैंने भड़काने के लिए कहा, "तो साले इसके लिए अमरीका जाने की क्या जरूरत है ? यहाँ हर घर मे हैम्बर्गर है।"

वह बोला "हाय, वह बेस बॉल।"

"यह क्या होता है ?"

बीस मिनट की व्याख्या के बाद पता चला कि अमरीकी बेसबॉल वही है जिसे हम लोग बचपन में लक्कड़ डंडा के नाम से खेलते थे।

अमरीका से बहुत दूर आज से हज़ारों बरस पहले जिसे हमारे बुजुर्ग खेलते आये हैं। बोसबॉल ? हूं ?

"और नेकिंग पार्टी।"

"वह क्या ?"

लौंचड की आँखों मे सपने तैरने लगे। वह बोला, "नेकिंग पार्टी का पहला असूल यह है कि इस पार्टी में कोई पति अपनी बीवी के पास नहीं जायगा और बीवी हमेशा इस पार्टी में किसी दूसरे की गोद में बैठेगी। ओ बॉय, ओ बॉय। मुझे सिनसिनाटी की वह पार्टी याद आती है · · ·

वह अपनी याद में खो गया।

गर्म कुत्ते और गर्म औरतें। खाली बतलें और खाली दिमाग।

एकाएक मुझे मतली-सी लगने लगी।

मैंने पूछा, "तुमने अमरीका में और कुछ नहीं देखा ?"

वह बोला, "क्या ?"

"हावर्ड फ़ास्ट को तो देखा था !"

"कौन ?"

"पॉल रोबसन !"

"कौन ?"

"वाल्ट ह्विटमैन की शायरी सुनी या पढ़ी थी ? बच्चों को स्कूल जाते हुए देखा था ?"

जगमोहन ने कहा, "मैं स्टेट्स में इन फ़जूल बातों के लिए नहीं

गया ।"

मेरा गुस्सा बढ़ता जा रहा था । मैंने लौंचड़ की टाई पकड़कर कहा, "और तुम . अमरीका से यह टाई लाये हो ? जिसके एक तरफ शराब पीना है, दूसरी तरफ़ नंगा नाच ! एक तरफ़ जूआ है, दूसरी तरफ शरीर की बिक्री ! एक तरफ़ दमैन है, दूसरी तरफ एटम बम है । " लेकिन तुम्हारा अमरीका है दोस्त ! मेरा अमरीका ऐसी टाई नहीं है । मेरा अमरीका तो ऐसी टाई है जिसकी एक तरफ़ अगर एब्राहम लिंकन है, तो दूसरी तरफ़ मेहनत करने वाला हब्शी है, जिसकी एक तरफ़ वाल्ट ह्विटमैन है तो दूसरी तरफ़ अमरीकी जहाज़ी हैं, एक तरफ़ बच्चे से मुहब्बत करने वाला बाप है तो दूसरी ओर पति की वफादार बीवी, एक तरफ़ पॉस्कल की बहादुरी है तो दूसरी ओर शान्ति का प्रतीक कबूतर । मैं ऐसी टाई हमेशा अपने गले में पहनता हूँ और इसे सौ बार चूमता हूँ ।"

उसने अपनी टाई छुड़ाते हुए कहा, "तुम हमेशा से वैसे-के-वैसे राजनीतिक बुद्धू रहे ।"

फिर उसने अपनी निगाहें मेरी तरफ से हटाकर बार की छत पर गड़ा दीं और उपेक्षा-भरे स्वर में बोला, "हाय, इस वीराने देश में कितनी घुटन है । काश ! मैं फिर अमरीका जा सकता ।"

"काश ! तुम जा सकते ।" मैंने पूरी घृणा से कहा ।

"मगर अब कौन सी ट्रेनिंग लूँ ।" वह मेरी घृणा न समझकर बड़ी बेचैनी से पूछने लगा, "वज़ीफा तो मैं किसी-न किसी तरह पा ही लूँगा ।"

"अब कि तुम इंसानी खोपड़ियों का तेल निकालने की ट्रेनिंग लो । इसके लिए तुम्हें स्कालरशिप भी मिल जायगा और फिर अमरीका के प्रमुख लोगों ने इसके लिए बहुत सुविधाएँ बना रखी हैं ।"

इतना कह कर मैं उसकी मेज़ से उठा और बाहर चला गया ।

लौंचड़चन्द पल-भर मेरी ओर हक्का-बक्का देखता रहा । फिर उसे

अपने सामने एक पुर्तगाली सुन्दरी दिखाई दी जो अपनी सीट पर बैठी-बैठी बैंड की गत पर ताल दिये जा रही थी।

लॉचड ने बड़े जोर से 'हम्फी' कहा और अपनी टाई का सिरा बदलने लगा।

एक सफ़र

लाहौर की अखिल भारतीय प्रदर्शनी देखकर वह अब कलकत्ता जा रहा था। तीसरे दर्जे में जहाँ उसे जगह मिली बहुत भीड़ थी जिससे दम घुट रहा था। तीसरे पहर की सूरज की तेज़ किरणें उसके दिल और दिमाग को छलनी कर रही थीं। तार के खम्भे, शीशम, बेरी और नीम के रूखे पेड़ चुपचाप गुजरे जा रहे थे। कहीं-कहीं गन्दे जोहड़ों में भैंसें लेटी हुई थीं। और कहीं कमल के कुम्हलाये हुए फूल फैले हुए थे। इंजन की काली राख मीलों तक एक गन्दले बादल की तरह गाड़ी के ऊपर छा रही थी। लाहौर की प्रदर्शनी में उसने लाल रंग की राख फाँकी थी जो पुराने किले की ईंटों को कूटकर नुमायश के मैदान में बिछाई गई थी। नुमायश के बाहर पीले रंग की राख उड़ रही थी जिसमें घोड़ों की लीद और बैलों के पेशाब की पवित्र बू भी मिली हुई थी। कराची से लाहौर आते हुए उसने रंग-रंग की रेत फाँकी थी। काली पीली नारंगी ऊदी राख उसके वतन की थी इसलिए उसे बहुत प्रिय थी। वह उसे अक्सर फाँका करता था। जो अमीर लोग थे वे इस ख़ाक से बच कर चलते थे। मोटर में—फ़िटन में, फर्स्ट क्लास के डब्बे में, हवाई जहाज़ में। लेकिन वह इन अमीर लोगों की तरह बेइज्जत

न था। उसे अपने देश की मिट्टी से मुहब्बत थी। वह उसके लिए अपनी जान तक देने को तैयार था। वह तैयार होता-न-होता इसमें कोई शक नहीं कि यह राख ज़रूर उसकी जान लेने पर तुली हुई थी। यही राख फाँकते-फाँकते उसे अब अक्सर खाँसी रहती थी। नज़ला, खाँसी और बुखार। एक चक्र मे तीन निशान थे जो बारी-बारी आते थे। इनके बीच में बस वही राख।

उसका गला सूख रहा था। सामने की सीट पर एक मोटा-सा बनिया अपनी धोती में अपनी बदसूरत टाँगों की नुमाइश करता हुआ ऊँघ रहा था। उसके घुटे हुए सिर पर उसकी चोटी के बाल इस तरह खड़े थे जैसे फ़ूजीयामा पहाड़ की चोटी। उसने सोचा उसे इस वक्त फ़ूजीयामा की चोटी का ख़याल क्यों आया। जापान का सबसे ऊँचा ज्वालामुखी! उसने सोचा हो सकता है बनिये के सिर में आग का गरम लावा भरा है। यह बात है! अब उसका दिमाग साफ़ हो गया। वह चाहता था कि बनिये का सर फ़ूजीयामा पहाड़ की चोटी की तरह ज्वालामुखी बन जाय, फट जाय और फटकर भेजा लावे की तरह बहने लगे। उसे बनियों से इतनी नफ़रत क्यों है? एकाएक बनिये ने ऊँघना छोड़ दिया और वह एक लम्बी-सी जम्हाई लेकर डकारने लगा। दो-तीन डकारों के बाद उसने अपने पेट पर हाथ फेरा, फिर अपने सिर पर और फ़ूजीयामा पहाड़ की चोटी सतह के बराबर हो गई। उसे यह देखकर बहुत दुःख हुआ। उसका गला सूख रहा था। एकाएक बनिये ने सीट के नीचे हाथ बढ़ाकर पानी से भरी हुई एक सुन्दर-सी सुराही को निकाला। सुराही के मुँह में लकड़ी की एक खपची-कपड़े में लिपटी हुई एक मजबूत डाट की तरह लगी थी। बनिये ने पानी एक गिलास में उँडेल लिया और गटागट पीने लगा। उसका गला सूख रहा था। लेकिन उसने बनिये से पानी माँगना अनुचित समझा। उसने सोचा शायद बनिया मुफ़्त पानी न पिलाए, सूद-दर-सूद लगाये, और आखिर पानी के एक गिलास के एवज़ में उसे अपना सूटकेस, बिस्तर और कोट

भी नीलाम करना पड़े। उसे कई ऐसी घटनाएँ मालूम थीं कि जब बनिये ने किसी किसान को एक रुपया उधार देकर बीस साल के बाद सूद-दर-सूद लगाते हुए उसकी ज़मीन, घर, माल, मवेशी सब-कुछ हथिया लिया था। बनिये ने गिलास खाली कर दिया। बनिये की सीट के कुछ दूर पर एक दुबली-पतली औरत सिर झुकाए उदास बैठी थी। उसके कपड़े गन्दे और पुराने थे। और उसका चेहरा भी उसके कपड़ों की तरह था। उसकी गोद में एक बच्चा था। यह बच्चा बनिये को पानी पीते देखकर मचल गया। वह बहुत देर से पानी-पानी कह रहा था। बनिये ने अपनी मैली आँखों के कोनों से उस औरत और बच्चे की ओर देखा और बड़ी सावधानी से लकड़ी की खपची सुराही के मुँह पर जमा दी और आराम से आलथी-पालथी मारकर सीट पर बैठकर ऊँघने लगा।

गाड़ी के पहिए, एक खास ताल पर हरकत करते हुए जा रहे थे। मैदानों से परे क्षितिज के पास पेड़ों के धुँधले साये एक चक्र में घूम रहे थे। एकाएक वह खाँसने लगा। खाँसी—नज़ला—बुख़ार। उसने सोचा ज़मीन गोल है। वरना ये धुँधले साये एक चक्र में न घूमते। यह बनिया आलथी-पालथी मारकर यूँ न ऊँघ सकता। इस बच्चे के शरीर के अंगों से उसके माँ बाप की भूखी ज़िन्दगियाँ यूँ बे-शर्मी से न झाँकतीं। हाय! वह फूजीयामा पहाड़ की चोटी! वह बच्चा अभी तक चिल्ला रहा था, पानी, पानी। उसे बहुत गुस्सा आया। उसने चाहा कि वह बच्चे के गाल पर, चटाख़ से एक चाटा लगा दे और कहे, हरामी, यह ले, पानी पानी की रट लगा रखी है। यूँ कहो कि ज़मीन गोल है, ज़मीन गोल है, पानी फजूल है, बनिया कंजूस है, सुराही पर लकड़ी की खपची जमी है। गाड़ी चल रही है। ज़मीन गोल है। गाड़ी चल रही है। नहीं, गाड़ी धीमी हो रही थी। गाड़ी खड़ी हो गई। यह सन्दीले का स्टेशन था। उसने गाड़ी से उतरकर पानी पिया और इंजन की काली राख को जो उसके तालू से लगी थी तर करके अपने पेट में उतार लिया।

पत्थर के कोयले की राख, उसने सोचा, बहुत स्वास्थ्य बनाने वाली होती है। इससे लोहे के बड़े-बड़े इंजन चलते हैं। इन्सान के इंजन के लिए भी यह अवश्य फायदेमन्द होगी। जरूर होगी, उसने एक और घूँट नीचे उतार के सोचा। फिर उसे उस छोटे से बच्चे का ख़याल आया और वह गिलास में पानी भरकर बच्चे के लिए ले गया। बच्चा पानी पीने लगा। लेकिन उसकी माँ के चेहरे पर कोई मुस्कराहट न पैदा हो सकी। यह औरत, उसने सोचा, मुस्कराना नहीं जानती। न सही, हम सन्डीले के लड्डू खायेंगे। न मुस्कराये हम तो सन्डीले के लड्डू खायेंगे। सन्डीले के लड्डू! उसने सुन रखा था, बहुत मीठे होते हैं। मीठे और स्वादु! उसने लड्डुओं से भरी हुई एक छोटी सी टोकरी आठ आने में खरीद ली। इस टोकरी पर लाल पीले कागज बँधे हुए थे। उसने बच्चे के हाथ में एक लड्डू दिया। जरूर, यह औरत मुस्कराना नहीं जानती। या शायद बरसों से उसने मुस्कराना छोड़ दिया है। या वह उसकी मुस्कराहट को नहीं देख सकता जो उसके मैले चेहरे की निचली गन्दी तहों के नीचे ही दबकर रह जाती है। और उभरने नहीं पाती। उसने सोचा इस औरत को साबुन की टिकिया की ज़रूरत है। अगले स्टेशन पर वह उसे साबुन की एक टिकिया खरीद देगा।

अगले स्टेशन पर वह साबुन खरीदना बिलकुल ही भूल गया। क्योंकि अब एक नौजवान रंडी उसकी सीट के करीब आ बैठी। और उसके साफ़-सुथरे कपड़े और उसकी चमड़ी के निखरे हुए रंग को देखकर उसे साबुन खरीदना बेमाने और बेकार-सा मालूम हुआ। इस रंडी के साथ एक दोहरे बदन वाला हट्टा-कट्टा मुस्टंडा था। रंग मुश्की, चेहरे पर बड़ी-बड़ी फैली हुई मूँछें और गर्दन और ठोडी के बीच एक गहरे घाव का निशान। उसके शरीर में एक फुरेरी-सी आई और उसने गर्दन मोड़कर रंडी की ओर देखा। सचमुच जवान थी। चेहरा सुनहला, चमड़ी बेदाग, होंठ रसीले और भावभरे। आँखें गहरी काली! रंडी उसकी ओर देखकर मुस्कराई! और उसने उसे कनखियों से देखना छोड़

दिया। मुश्की रंग के आदमी ने खाँसकर एक-दो बार अपनी मूँछों पर हाथ फेरा और फिर अपनी सीट पर लेट गया और टाँगे ऊपर करके सीट से लगा दीं। उसका पेट किसी गर्भवती औरत के पेट की तरह ऊपर को उठा हुआ था। और कुछ मिनटों ही में उसमे खर्राटों की लहरें पैदा होने लगीं। मूँछों के बाल इस तरह हिल रहे थे जैसे चुम्बक की लहरों से लोहेचून के तार खड़े हो जाते हैं। सूरज सीमान्त की लकीर पर झुक रहा था। और बनिया ऊँघता-ऊँघता जाग गया था। और फटी-फटी निगाहों से रंडी की ओर देख रहा था जिसने अब अपना सिर अजब शान और अदा से खिड़की के साथ लगा दिया था, और एक चौखटे में जड़ी हुई तसवीर की तरह दिखाई दे रही थी जिसे आर्ट-गैलरी में नुमायश के लिए टाँग दिया गया हो। उसने सोचा कि वह उसकी साड़ी के पल्लू से एक फीता टाँग दे। और फीते के सिरे पर एक टिकट बाँधकर लिख दे, कलाकार की प्रेमिका, कीमत पाँच सौ रुपया। रंडी के रसीले होंठ खुल गए और सफेद दाँतों की एक प्यारी-सी लड़ी नज़र आने लगी। बनिया फटी-फटी निगाहों से उसकी तरफ देख रहा था। और वह धीरे से अपनी जाँघ खुजाने लगा। उसके दिल में आया कि वह पानी से भरी हुई सुराही बनिये के सिर पर तोड़ दे। उसने सोचा यह बनिया है। हर रोज मन्दिर में जाता है। औरत को देवी समझता है। जिसके लिए घर मे एक अलग चार दीवारी, घर से बाहर एक अलग स्कूल, गाड़ी में अलग डब्बे बनवाता है। लेकिन जब किसी खूबसूरत औरत को देखता है तो अनजाने हो जाँघ खुजाने लगता है। खूबसूरती और खारिश। इन दोनों में शायद कोई गहरा सम्बन्ध है। खूबसूरती और खारिश, उसने सोचा, कि अब वह अपनी जिन्दगी एक तसवीर बनाने में लगा देगा जिसका शीर्षक होगा खूबसूरती और खारिश। फिर उसे खयाल आया कि इस तसवीर की नुमायश हिन्दुस्तान में कानून द्वारा रोक दी जायगी। अच्छा यही है कि वह अपने देश की राख फाँके और इस गाड़ी में घुटकर मर जाय। यह खयाल

करते ही वह अपनी बेवकूफी पर मुस्कराने लगा।

उसे मुस्कराते देखकर रंडी भी मुस्कराई। शायद अब वह न अपनी खूबसूरती पर मुस्करा रही थी, न बनिये की खारिश पर। ये दोनों चीज़ें जैसे अब उसकी जिन्दगी का आवश्यक हिस्सा बन चुकी थीं। यह मुस्कराहट जैसे किसी अनुभवी शिकारी की निगाह थी। और उसने सोचा कि क्यों न वह भी कुछ पलों के लिए कामना बन जाय। सूरज क्षितिज की लकीर पर झुककर डूब गया था। लेकिन घूमते हुए खेत, पानी के जोहड़, पेड़ों के झुंड और उनके घने मरियल से साये अभी तक उसके इस सुनहरी जाल में बँधे थे। उसने रंडी के सुनहरी बालों की ओर देखा और उसने सोचा कुछ पलों के लिए मुझे भी इस सुन-हरी जाल की शरण लेनी चाहिए। फिर शाम आ जायगी।·कालिमा और ··रंडी की गर्म सांस, और वह उसके निकट सरक गया।

परवाने ने पूछा, "तुम कहाँ जा रही हो?"

रन्डी ने जवाब दिया, "यह तुम्हारी भूल है। मैं वहीं जमी बैठी हूँ, केवल तुम मेरे पास आ रहे हो।"

उसने कहा, "तुम बहुत खूबसूरत हो।"

रंडी ने कहा, "खिड़की से बाहर सिर निकालकर बात करो। यहाँ हर आदमी हमारी बातें सुनना चाहता है।"

उन दोनों ने खिड़की में से सिर बाहर निकाल लिये। उसने रंडी का हाथ अपने हाथ में ले लिया। और उसकी नीलम की अँगूठी को टटोलने लगा।

"यह अँगूठी मुझे फर्रुखाबाद के नवाब ने इनाम में दी थी।"

"अब तुम कहाँ जा रही हो? वापस अपने घर।"

"नहीं। जमशेदपुर के नवाब ने बुला भेजा है। वहाँ जा रही हूँ। सुना है वह बड़ा अमीर और उदार नवाब है।"

"यह गाड़ी जमशेदपुर कब पहुँचेगी?"

"रात के दो बजे। नवाब साहब के आदमी हमें लेने के लिए स्टेशन

पर आए होंगे।" रंडी उसका हाथ पकड़कर इधर-उधर हिलाती रही। जैसे वह कोई खिलौना हो। उसने मूंछों वाले आदमी की ओर इशारा करके पूछा, "वह कौन है?"

"मेरा पति है।"

"बड़ा हरामी है... जाने दो उसकी बात।" वह खिड़की में से और आगे को उसकी ओर झुक गया और उसके रसीले होंठों को तकने लगा। रंडी ने उसका हाथ हिलाते हुए शोख़ी और शरारत से कहा, "एक रुपया।"

परवाना सहसा उस बिन्दु की ओर चला, जहाँ मकड़ी अपने पर फैलाए सफेद तागों का रूसी लिबास पहने उसकी प्रतीक्षा कर रही थी और फिर दूसरे पल परवाने ने उसके अनगिनत बाज़ू अपने शरीर के चारों ओर लिपटे हुए देखे।

एक बार...दो बार...रंडी ने नरम निगाहों से उसकी ओर देखकर कहा, "यह तुमने क्या किया? यह तुमने अच्छा नहीं किया।"

उसने कहा, "चलो एक रुपया उधार रहा, चलो थूक दो गुस्सा।"

और अगले स्टेशन पर वह एक आने की एक पाव गँडेरियाँ खरीद कर लाया। गँडेरियाँ मीठी थीं और रसदार। बरफ में लगी हुईं और गुलाब की पत्तियों से सनी। वे दोनों खिड़की में से बाहर झुके हुए एक-दूसरे के मुँह में गँडेरियाँ डालते रहे। और उसने अपना उधार चुका दिया। बल्कि दो रुपयों का और उधार कर लिया और यकायक उसे अपनी आँखों में कोई चीज़ जलती हुई लगी और उसने घबराकर चेहरा अन्दर कर लिया। वह देर तक उस तकलीफ देने वाली चीज़ को अपनी आँखों से पपोटों तले ढूँढता रहा। और उसे जानकर बड़ा अचम्भा हुआ कि कई बार एक स्वप्नों से भरे मीठे रोमान को पत्थर के कोयले का सुलगता हुआ टुकड़ा हमेशा के लिए समाप्त कर देता है।

रात गहरी होती गई। डिब्बे में केवल एक बल्ब जल रहा था। उसकी रोशनी इन दोनों तक छनकर आती थी। एक आराम का साँस

ले कर रंडी सीट पर लेट गई। वह उसके सिरहाने बैठकर ऊँघने लगा। रंडी का एक हाथ उसके हाथ में था। कभी-कभी वह आँखें खोलकर उसकी ओर देख लेती। और वह उसका हाथ दबा देता। फिर वह सो गई और उसकी अपनी गरदन भी छाती पर झुक गई। अब वह गहरी नींद में खो गया। नींद में खो जाने से पहले उसे केवल दो बड़ी बड़ी आँखों के खुलने का पता था और या दूर रंडी के पाँव में पाज़ेब के फूल जो धीमे सितारों की तरह चमकते हुए झिलमिलाते हुए नज़र आ रहे थे। फिर एक गहरे अँधियारे ने उसके भावों पर राज जमा लिया।

जब वह जागा तो सुबह हो चुकी थी। गाड़ी इलाहाबाद के स्टेशन से गुज़रकर गंगा-जमना के संगम पर पुल के ऊपर गुज़र रही थी। पौ फटने से एक निराली सुबह की हलकी-सी रोशनी चारों ओर फैली हुई थी। संगम का पानी नीला-नीला खुशी से हँसता हुआ मालूम होता था। रंडी और मूँछों वाला आदमी जा चुके थे। रात के दो बजे जमशेदपुर के स्टेशन पर शायद उतर गए होंगे। उसे कुछ मालूम न था कि कब ? हाँ, वह उदास औरत और उसका बच्चा सामने खिड़की में बैठे हुए दिख रहे थे। यह औरत इस संगम की खूबसूरती को देखकर भी नहीं मुस्करा सकती। अच्छा, अगले स्टेशन पर वह जरूर उसके लिए साबुन की टिकिया खरीद लेगा। संगम के दृश्य से दुनिया के सारे दारिद्रय दूर हो जाते हैं। सारे पाप धुल जाते हैं। दाता, यह संगम है। एक पैसा दो ! यह संगम है। गाड़ी पुल पर से गुज़र रही थी ! और छोटे-छोटे ब्राह्मण लड़के पुल के लोहे के शहतीरों से चिपटे हुए पैसा माँग रहे थे। दाता, एक पैसा, गंगा माई तुम्हारा कल्याण करेगी। केवल एक पैसा ! यह पवित्र संगम है ! अपने कल्याण के लिए ब्राह्मण को एक पैसा दे दिया जाय। मुसाफिर अपने कल्याण के लिए पैसे फेंक रहे थे। पैसे गंगा माई तक पहुँचने न पाते कि ब्राह्मण लड़के इन्हें रास्ते ही में दबोच लेते थे। वे एक शहतीर से दूसरी शहतीर तक चालाक बन्दरों की तरह छलाँगें लगाते जाते और मुसाफिरों को आत्मा के

कल्याण के लिए पैसा माँगते जाते थे। मुसाफिरों की आत्मा की मुक्ति के लिए, मुसाफिरों की मुक्ति और निर्वाण के लिए इन्हें अपनी जान का भी डर न था। क्योंकि यह सम्भव था कि मुसाफिर के कल्याण की प्रार्थना करते-करते कहीं वे नीचे संगम में गिरकर अपने लिए निर्वाण न प्राप्त कर लें। उसे ब्राह्मण लड़कों के इस साहस, हिम्मत, बहादुरी और धर्मसेवा पर बहुत ईर्ष्या हुई। काश, वह भी एक ब्राह्मण होता। और इस तरह माथे पर तिलक लगाए संगम के पुल की शहतीरों पर अपनी जान जोखम में डाल मुसाफिरों से एक-एक पैसा माँगता और उनकी आत्मा के लिए मुक्ति माँगता। यह सोचकर उसे बहुत दुःख हुआ कि रात-भर वह मीठी गंडेरियाँ रसीले होंठ और सन्डीले के लड्डू चूसता रहा और खाता आया।

बनिया धीमे-धीमे सुरों में राम नाम का जाप कर रहा था। फूजी-यामा की चोटी फिर उभर आई थी। एक कोने में कुछ लोग नमाज़ पढ़ने की तैयारी कर रहे थे। एक सिख अपने सामने सीट पर एक छोटा-सा आयना रखे अपने लम्बे-लम्बे केशों में कंघी कर रहा था और जपजी का पाठ गुनगुना रहा था। और सिर्फ एक कोने में वही गरीब औरत अपने बच्चे को छाती से लगाए खिड़की में इस तरह बेजान बिना हिले-डुले बैठी थी जैसे उसकी कभी मुक्ति नहीं हो सकती।

खिड़की में से उसने अजीब-अजीब नजारे देखे। ऐसे नज़ारे वह हर रोज देखता था। लेकिन न जाने इनका अजब अनोखापन उसने पहले क्यों अनुभव नहीं किया था। एक गंदले घाट पर से औरतों की कतार घड़े उठाए हुए गाँव की तरफ जा रही थी और गायों-भैंसों की एक कतार उसी घाट पर पानी पीने के लिए आ रही थी। एक धोबी बैल पर कपड़े लादे हुए घाट की ओर जा रहा था। एक आदमी अपनी धोती सम्भालता हुआ लोटा हाथ में लिए एक बड़ की ओट से निकला। और घाट की ओर चला गया। कसबे के घरों के सामने सरकंडों की बाड़ पर पुराने चीथड़े फैले हुए थे और उन्हें देखकर उसे गाड़ी में बैठी

हुई गरीब औरत का मुँह याद आ गया। यह हमारा देश है। पूरब का खलिहान। दूर-दूर तक खेत फैले हुए थे। फसलें पकी खड़ी थीं। और सरकंडों पर चीथड़े फैले हुए थे। हरे-हरे तोतों की कतारें पर फैलाए खुशी से चीखती हुई तार के खम्भों के ऊपर उड़ी चली जा रही थीं।

उसने सोचा अगर इन्सान तोते होते तो—शायद इस गरीब औरत के मुँह पर मुस्कराहट आ जाती। किसी आदमी ने ताककर उसकी कल्पना पर निशाना लगाया। टिकट दिखाइए, बाबू साहब। उसने घबराकर टिकटचेकर की ओर देखा जो एक नोटबुक और एक टिकट छेदनेवाला औजार लेकर उसके सिर पर आ खड़ा हुआ था। उसने टिकट दिखाया, टिकटचेकर आगे बढ़ गया। उसकी निगाहें यूँ ही टिकट चेकर का पीछा करती गईं जब तक कि टिकटचेकर उस औरत के पास जा पहुँचा। और अब उसे मालूम हुआ कि यह औरत क्यों नहीं मुस्करा सकती थी। अगर वह औरत एक हरे रंग का तोता होती तो फुर्र-र से खिड़की में से उड़ जाती। लेकिन वह तो इन्सान थी, इसलिए चुपचाप खिड़की में बैठी रही और अगले स्टेशन पर टिकट-चेकर ने उसे उतारकर पुलिस के हवाले कर दिया। तोतों को पुलिस की ज़रूरत क्यों पड़ती! ये क्यों खुशी से चीखते हुए, चिल्लाते हुए तार के खम्भों के ऊपर उड़े जा रहे हैं? क्या ये नहीं जानते कि एक बेचारी औरत लोहे की छड़ों के अन्दर बन्द कर दी गई है और उसका नन्हा बच्चा पानी माँग रहा है! और बनिये ने सुराही पर ज़ोर से लकड़ी की खपची का डाट लगा दिया है। उस औरत का गाँव इस स्टेशन से कई कोस दूर है। वह गाँव जहाँ बाहर खेतों में खूबसूरत फसलें पकी खड़ी हैं और सरकंडों पर मैले चीथड़े फैले हुए हैं।

झट उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे उसे बहुत सख़्त भूख लगी है। और उसने अगले स्टेशन पर उतरकर डाइनिंग कार के नौकर को बुला-कर उसे खाना लाने को कहा। तीन-चार स्टेशन और गुज़र गये। गाड़ी में नये मुसाफिर आ गये थे। कुछ पुराने चेहरे इस डिब्बे से विदा हो

चुके थे। अगले स्टेशन पर बनिया भी चला गया। और उसे ऐसा मालूम हुआ कि अब वही इस डिब्बे में शरीफ लोगों का अकेला प्रतिनिधि रह गया है।

आख़िर बेयरा खाना ले आया। एक प्लेट में क़ोरमा जिसके शोरबे में याक़ूत की-सी लाली थी। एक प्लेट में अंडों का शोरबा, ज़र्दी सफ़ेदी और लाली का सुन्दर मेल। और लेमू के रस में रचे हुए प्याज़ और टमाटर के टुकड़े, विटामिन। बिहारी क़िसान उसे और उसके खाने की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे और उसे खाना खाते हुए ऐसा लगा जैसे वह लहू के घूँट गले के नीचे उतार रहा है। लेकिन किसका लहू? बिहारी किसान अपनी पोटलिएँ खोलकर खाना खा रहे थे। मोटी-मोटी रोटियाँ जिनसे बदबू आ रही थी। शायद पिसे हुए चावलों से तैयार की गई थीं। धुँधली मिट्टी के रंग-सी और बस! न सालन, न प्याज़! न विटामिन! उसने दिल-ही-दिल में एक बिहारी किसान से पूछा, "तुम विटामिन नहीं खाते हो?" बिहारी किसान ने उसके दिल से कहा, "मेरे बदन पर यही धोती है। कई दफा हमारे घर की औरतों के पास भी सिर्फ एक धोती होती है जिसे वे बाहर जाते वक्त बारी-बारी पहनती हैं वरना उनकी सारी उम्र इन्हीं चीथड़ों को पहनते गुज़र जाती है। जो तुमने सरकंडों पर फैले हुए देखे थे। और विटामिन . "

फिर उसने ऊँची आवाज़ में एक बिहारी किसान से कहा, 'तुम गाँधी को जानते हो?" बिहारी किसान ने रोटी का एक बड़ा-सा टुकड़ा गले से नीचे उतारते हुए कहा—

"नहीं"

"जिन्ना को?"

"नहीं"

"अपने गाँव के नम्बरदार को?"

"हाँ"

"एक रुपया में कितने आने होते हैं ?"

"सोलह" उसने अचरज से कहा, शायद वह किसान उसे पागल समझ रहा था।

खाना खा चुकने पर उस पर नींद-सी छा गई और वह सीट पर टाँगें फैलाकर सो गया। क्षितिज की लकीर पर फूजीयामा पहाड़ की चोटी दिखाई दे रही थी और उसमें से लावा फूट-फूटकर बह रहा था। बनिया सुराही का डाट खोलकर उस लकड़ी की खपची से उस ज्वालामुखी का मुँह बन्द करने की कोशिश कर रहा था '' साबुन की लाखों टिकियाँ तार के खम्भों पर खुशी से चिल्लाती उड़ी जा रही थीं ''और हरे-हरे तोते सरकंडों में फैले हुए चीथड़ों को कुतर-कुतर कर फेंक रहे थे 'गरीब औरत मुस्करा रही थी और उसका बच्चा लोहे की छड़ हाथ में लिए पुलिसमैन का पीछा कर रहा था। गाड़ी गंगा-जमुना के संगम पर खड़ी थी और छाबड़ी वाले ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे थे ' औरत के होंठ ''रसीले भावों भरे होंठ कीमत एक रुपया ' सन्डीले के लड्डू कीमत आठ आने गुलाबी गंडेरियाँ एक आने की एक पाव निर्वाण की कीमत एक पैसा ''उसने अपनी जेब में हाथ डालकर एक रुपया निकाला और एक तिलकधारी छाबड़ी वाले से कहा, "मुझे एक रुपये की मुक्ति देना" ' हरे-हरे तोते ज़ोर-जोर से हँसने लगे। और वह हड़-बड़ाकर उठ बैठा।

इंजन की रफ्तार धीमी हो गई थी और गाड़ी हावड़ा स्टेशन में घुस रही थी।

गोपाल कृष्ण गोखले

बहुत दिनों से गोपाल कृष्ण गोखले मेरे लिए आदरणीय हैं। हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई के पहले राउंड में स्वर्गीय गोखले की सेवाएँ हिन्दुस्तान के इतिहास में सुनहरे अक्षरों में लिखी जाने वाली हैं। मेरा मतलब है इस समय तक वे काले अक्षरों में छपी हैं जिनमें मेरा यह लेख छप रहा है लेकिन एक समय वह अवश्य आएगा जब इंडियन नैशनल कांग्रेस हमारे देश की आज़ादी के इतिहास का संकलन करेगी या किसी बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ से उसका संकलन करवाएगी उस समय अवश्य ही स्वर्गीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले की सेवाएँ सोने के अक्षरों में लिखी जायँगी। अगर सोना महंगा हुआ तो चाँदी के अक्षरों में लिखी जायँगी, मतलब यह कि ये सेवाएँ ऐसी नहीं हैं कि मामूली काले अक्षरों में लिखी जायँ। स्वर्गीय गोखले बड़े अच्छे वक्ता थे। इम्पीरियल काउंसिल में उनके भाषण सुनकर स्वयं वाइसराय, हजूर वाइसराय तक झूम जाते थे। गोखले महाराज महात्मा गाँधी जी के गुरु थे। मानो नई हिन्दुस्तानी राजनीति के निर्माता। और इस तरह हिन्दुस्तान की आज़ादी के अग्रगणी भी थे। मेरे दिमाग में जब कभी गोपाल कृष्ण गोखले का नाम आता है तो सारे शरीर में फुरहरी सी आ जाती है। और आत्मा चंचल हो जाती है।

इस समय मैं मृत आत्मा की बात इसलिए कर रहा हूँ कि यह कहानी स्वर्गीय गोखले के बुत से शुरू होती है जो बम्बई में चर्चगेट के पास सेंट्रल टेलिग्राफ आफिस के सामने खड़ा है। उस दिन सोलह अगस्त की तारीख थी। यानी स्वतन्त्रता दिवस के उत्सव के दूसरे दिन ही शाम के वक्त मैं घूमता हुआ आया और देर तक स्वर्गीय गोखले के बुत को उमड़ते प्यार से तकता रहा। आदर और श्रद्धा से दिल उमड़ने लगा। आँखों में आँसू झिलमिलाने लगे। आज स्वर्गीय गोखले की आत्मा कितनी खुश होगी। वह सपना जो उन्होंने अपनी कल्पना में देखा था आज हमारी आँखों के सामने एक वास्तविकता बन चुका है। आज हिन्दुस्तान की जनता आज़ाद थी। आज इनकी सदियों की भूख गुम हो चुकी थी और जहालत काफ़ूर। अब ये खेत इनके थे। ये कारखाने इनके थे। ये सारे देश का धन-दौलत इनका था। वे अपने घर के मालिक। आज़ादी की लड़ाई जीती जा चुकी थी। और आज हमारी आज़ादी का दूसरा दिन था।

आप पूछेंगे भई अजीब बुद्धू हो तुम, आज़ादी के पहले दिन यानी पन्द्रह अगस्त को तुम कहाँ थे जब सारे हिन्दुस्तान में और खासकर बम्बई में इतना शानदार और बड़ा और बे-मिसाल उत्सव मनाया गया, उस वक्त तुम कहाँ थे ?

असल में उस दिन भी मैं बम्बई में था लेकिन भाग्य देखिए कि उस दिन जेब में एक पैसा भी न था वरना ख़याल यही करता था कि बीवी-बच्चों को लेकर बाहर चलूँगा और स्वतन्त्रता दिवस की धूमें मनाऊँगा। मगर उस रोज़ घर में अचानक ही केवल पाँच आने थे। अचानक ही तो शायद इसे न कहिए, असल में अपने यहाँ हर महीने की दस तारीख तक तनख्वाह बिलकुल साफ हो जाती है। अब आप ही बताइए एक सौ रुपयों में बम्बई में महीना भर कैसे गुज़र हो सकती है। चालीस रुपये तो मकान का किराया है और साठ रुपया महीने का राशन आता है। सौ तो ये हुए। अब धोबी है, नाई है, लकड़ी,

कोयला, घी, नून, तेल, मसाला है। लोकल गाडी का पास है। कभी-कभार सिनेमा है। सुबह-शाम दो बच्चों को पढ़ाता हूँ फिर भी पूरा नहीं पड़ता। आप कहेंगे यहाँ से खड़ाग ले बैठे। यह तो हर घर का किस्सा है। तुम अपनी दिलचस्प कहानी सुनाओ जिसमें जी बहले और दिल पर नशा छाए और आँखों में मादकता आए और हम भी समझें कि चलो ठर्रे का एक पेग न पिया और बेवफा बीवी का स्टंट पिक्चर न देखा, कृष्णचन्द्र की कहानी पढ़ ली, सुन ली, देख ली, चलो आगे चलो।

ख़ैर जी, तो आगे चलिए। मगर दिलचस्प बात यह ज़रूर थी कि आज़ादी के दिन घर में रकम न थी कि बहार का उत्सव मनाया जाता। दिल में यह भी उमंग थी कि तिरंगा झंडा मकान के ऊपर लहराया जाय मगर कम्बख्त बनियों ने पन्द्रह अगस्त से पन्द्रह दिन पहले ही कौमी झंडों के दाम वह बढ़ा दिए थे कि हर गरीब के लिए झंडा मोल लेना असम्भव था। अच्छा झंडा दस रुपये से सौ रुपये तक मिलता था। मामूली झंडे तो खैर तीन-चार-पाँच रुपये तक मिल जाते थे। शौक़ीन मिज़ाज़ लोगों ने रेशम के झंडे सिलवाये और शार्कस्किन की गाँधी टोपियाँ और औरतों ने तिरंगी साड़ियाँ बाँधी और जो बहुत अमीर लोग थे उन्होंने घरों के बाहर बड़े-बड़े बिजली के कुमकुमों से तिरंगे झंडे बनवाए थे जिनके बीच में सुभाषचन्द्र बोस की तसवीर थी। बड़ी अच्छी तसवीर थी। अपना जी भी ऐसी ही तसवीर और ऐसी ही रोशनी के लिए तरसता था लेकिन जेब में केवल पाँच आने थे इसलिए हमने तीन आने में वह तिरंगा झंडा खरीदा जो पतंग के कागज़ का बना हुआ था, दो आने के दाल, सेव, चूड़ा लिए और फाँक के ऊपर से पानी पी लिया और आज़ादी की देन के गुण गाते हुए सो गया। सुना है उस रात को सारा शहर बम्बई दुलहिन की तरह सजा हुआ था। हम लोग तो जा नहीं सके क्योंकि लोकल गाड़ी का किराया भी नहीं था और इत्तफाक से किसी से माँगा तो उसने दिया भी नहीं।

मगर दूसरे रोज़ यानी आजादी के दूसरे रोज़ हम गए बम्बई, आज़ाद बम्बई, की सैर करने। सुबह-ही-सुबह पड़ोस में जो धोबी रहता है उससे दो रुपये माँग के चले ईद के पीछे टर्र मनाने। जी बड़ा खुश था। हर चीज़ मे जैसे खुशी फूटी पड़ती थी। अपने मकान के बाहर कुत्ता दुम हिलाता हुआ जा रहा था। सामने खपरैल की झोंपड़ी से बुड्ढे के कराहने की आवाज़ आ रही थी। यह बुड्ढा कई दिनों से बीमार था और आजकल में मरने वाला था। घर में कोई नहीं था। बेटा मर चुका था और बहू तीमारदारी किया करती थी। मगर बेचारी के पास दवा दारू के लिए पैसे कहाँ होते इसलिए साधू-सन्तों से राख की चुटकी लाती और पानी में घोल के बुड्ढे को पिला देती। अब परमेश्वर को मजूर होगा तो बुड्ढा बच जायगा। मगर परमेश्वर को यह कहाँ मंजूर था! बुड्ढा आज़ादी के दसवें दिन चल बसा, मगर जिया तो सही, दस दिन आज़ादी के तो उसने देखे। अगर आजादी से पहले मर जाता तो गुलाम की मौत मरता अब आज़ाद देश की आजाद मौत मर रहा है। मुबारक है उसके आखिरी पल! मुझे तो घर से निकलते हुए बुड्ढे के कराहने की आवाज़ में भी खुशी की झलक नज़र आई। सामने मैदान में उपले सूख रहे थे। वे खूबसूरत केक से नज़र आ रहे थे। जैसे मैरीन ड्राइव पर रेस्टुराँ में केक लगे होते हैं। एक बार जब हमारे दफ्तर के मैनेजर विलायत जा रहे थे उन्होंने मैरीन ड्राइव के रेस्टुरां में हमारी दावत की थी, सारे स्टाफ की। उस दिन हम भी गए थे। कितने बढ़िया केक खाने को मिले थे। लाल-लाल और नारंगी और हरे-भरे और ऊपर ताज़ा मक्खन लगा हुआ। मैं तो दो-चार जेब में डालकर घर ले आया था। बीवी बच्चों ने बड़े शौक से खाए थे। मगर यह आज़ादी से बहुत पहले की बात है। बात उपलों की हो रही थी न! उपले चुनने वाली मरहटन शान्ता थी जिसकी उम्र साठ बरस से ऊपर थी। उसका कोई न था। वह उपले सुखाकर बेचती थी। मेंह आ जाय, धूप आय वह हमेशा एक ही साड़ी पहने जिसमें दर्जनों पैबन्द

लगे थे उपले सुखाती, उन्हें इकट्ठा करती और टोकरी में डालकर बेचती दिखती। 'उसकी नजर कमज़ोर पड़ गई थी और हाथ-पाँव भी ढीले हो गए थे और सिर भी हिलता था तो भी वह दिन-रात काम करती थी।

मैंने शान्ता से कहा, "माँ, कल से तो आज़ादी हो गई।"

"हाँ बेटा, सुनते हैं," उसने मुस्कराकर कहा, और फिर जल्दी से उपले चुनने लगी।

मैंने कहा, "माँ, बम्बई नहीं चलेगी? चल तुझे आज़ाद बम्बई की सैर करा लाऊँ।"

शान्ता कहने लगी, "बेटा, कैसे जाऊँ। अभी गाहकों के घर ये उपले पहुँचाने हैं। और न गई तो अपने घर में चूल्हा कैसे जलेगा।"

जब मैं बाज़ार के नुक्कड़ पर पहुँचा तो तिरंगी झंडियों के झुण्ड-के-झुण्ड हवा में लहरा रहे थे। और पुलिस वाले चौक में खड़े उस गाडीवान को हथकड़ी लगा रहे थे जिसकी गाड़ी से सेठ रणछोड़ लाल सकसेरिया की मोटर का मडगार्ड छू गया था। नई मोटर थी, सेठ ने आज़ादी की खुशी में आज़ादी से एक दिन पहले खरीदी थी। चालीस हजार रुपये में। और अब उसके मडगार्ड से वह जलील छकड़ा टकरा गया था। गाडीवान ने बहुतेरा कहा कि गलती सेठ सकसेरिया के ड्राइवर की है मगर लोग इसको गुनहगार ठहरा रहे थे और असल में अपना अनुभव भी यही कहता है कि ये गाड़ीवान बड़े बदमाश होते हैं। जान बूझकर अपनी गाड़ी किसी सेठ की नई मोटर से भिड़ा देना। आज़ादी से पहले इस किस्म की बातें सह ली जाती हों मगर अपने आज़ाद देश के आज़ाद राज में ऐसी बेइन्साफ़ी मुमकिन नहीं है। यही सोचता हुआ मैं खुशी खुशी आगे बढ़ा तो स्टेशन पर पौने ग्यारह की लोकल को पाँच मिनट लेट पाया। बड़ा हैरान हुआ कि पौने ग्यारह बजे की फास्ट लोकल जो कभी एक-आध मिनट भी लेट न होती थी आज पूरे पाँच मिनट कैसे लेट हो गई। जब फास्ट लोकल स्टेशन पर पहुँची तो स्टेशन मास्टर ने सजा के लिए फास्ट ट्रेन को मामूली

लोकल कर दिया। आखिर उसे कुछ-न-कुछ सज़ा तो मिलनी चाहिए थी न !

गाड़ी से उतरकर पहले तो मैंने जी भरकर बम्बई की सैर की। वही खूबसूरत इमारतें थीं, वही भरे हुए बाज़ार, वही भिखारी जनता, वही शेयर बाज़ार के सेठों की गाड़ियाँ, वही कारखाने की चिमनियाँ, वही मज़दूरों की गन्दी चालें, वही जूआघर, वही रेसकोर्स, वही स्टॉक-एक्सचेंज, वही माँगने वाले, वही हॉकर, वही फ़ुटपाथ पर सोने वाले। मगर आज जैसे हर चीज़ आज़ाद थी, खुश थी, हँसी से चमकती-चमकती नज़र आ रही थी। जैसे औरत नहाने और कंघी-पट्टी करने के बाद चमकती-चमकती-सी नज़र आती है। बस वैसे ही हर चीज़ खूबसूरत प्यारी और अलबेली मालूम हो रही थी। मेरा दिल खुशी से बल्लियों उछल रहा था। मैंने चार आने का पानी-पूरी खाया, चार आने के गुलाबजामुन खाए, नारियल का पानी पिया, उसका गुद्दा खाया, फिर नमकीन सेव टोंकता टोंकता चर्चगेट की तरफ आ निकला। अब शाम गहरी हो गई थी और सेंट्रल टेलिग्राफ आफ़िस के सामने पारसियों के खुले मन्दिर में रोशनियाँ खूब चमक रही थीं। पारसी लोग आकर हाथ जोड़कर माथा टेकते, हाथ जोड़ते मन्तर पढ़ते, कुएँ से पानी निकालते, फिर हाथ जोड़कर चले जाते। एक बड़ी खूबसूरत पारसी लड़की देर तक एक अमरीकी सिपाही से बातचीत करती रही, फिर वे दोनों घोड़ा-गाड़ी में बैठकर चले गए। मैं श्री गोपाल कृष्ण गोखले के बुत के चबूतरे पर चढ़कर सामने मैदान में लड़कियों का हाकी मैच देखता रहा। बड़ी खूबसूरत लड़कियाँ थीं। उनके बाल कटे हुए थे और उनकी टाँगें कैसी साफ़ चमकदार थीं जैसे अंग्रेज़ी सिनेमा में विलायती मेमों की टाँगें दिखती हैं। मैं देर तक देखता रहा। फिर मैच खत्म हो गया और मेरा ध्यान एकाएक चबूतरे के बुत पर पड़ा। गोपाल कृष्ण गोखले ! और मेरी नज़रों में भारत के इतिहास के वे सुनहरी पन्ने घूम गए जिनमें श्री गोपाल कृष्ण गोखले की देश के लिए

की गई सेवाओं का उल्लेख है और मैं वहीं चबूतरे के नीचे बेंच पर बैठ गया। और अपने देश के भविष्य के बारे में सोचने लगा। मुझमें खयाली पुलाव पकाने और हवाई किले बनाने की बहुत बुरी आदत है। यूँ ही वहाँ बैठे-बैठे मैंने गोपाल कृष्ण गोखले के आज़ाद हिन्दुस्तान का सपना देखा जहाँ सब बराबर हैं, जहाँ अब जनता का राज है, जहाँ कल के जेल के कैदी आज के राजा हैं, जहाँ अमीर-गरीब का भेद मिट गया है, जहाँ मजदूर कारखाने चलाते हैं और किसान जमीन में हल चलाकर अपनी मेहनत का पूरा फल पाते हैं, जहाँ सड़कों पर कोई नहीं सोता, जहाँ बिजली पानी मुफ्त है और मकानों का किराया बहुत कम है और कपड़े के दाम भी ज्यादा नहीं हैं जहाँ बुड्ढी शान्ता को उपले ढोने नहीं पड़ते क्योंकि अब उसकी उम्र साठ बरस के ऊपर है और जहाँ विधवा बहू के मरते हुए ससुर के लिए दवा-दारू का बन्दोबस्त भी है। बस, मैं देर तक इस तरह खुश-खुश अपने देश की आजादी की बातों के बारे में सोचता रहा और फिर मुझे इतना भी खयाल न रहा कि शाम खत्म हो गई है और रात शुरू हो गई है। और सामने की सड़क सुनसान हो गई है और गोखले महाराज का बुत काला पड़ गया है और सामने एरोस सिनेमा की बत्तियाँ खूबसूरत गाउनों, साड़ियों और पतलूनों से आँख मिचौली खेल रही हैं।

मैं अपना सुन्दर सपना देख रहा था कि किसी ने मुझे ठोकर लगाकर जगाया। मैं हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ और उस आदमी की ओर तकने लगा जो मेरे सामने खड़ा था।

वह बोला, "क्यों कोई छोकरी है?"

मैं हैरानी से उसकी ओर देखने लगा।

उसने मेरे अचरज को समझ लिया और अपनी गलती को भी। खिसियानी हँसी हँसकर बोला, "तू वह नहीं है तो इस बेंच पर क्यों बैठा है। यह बेंच लड़कियों के दलालों का है, है क्या समझे? तुम्हारे पास लड़की नहीं है तो इस बेंच पर काहे को बैठता है। साला खाली

पीली हैरान करता है।"

वह बकता-झकता चला गया। मैंने मुड़कर गोपाल कृष्ण गोखले के बुत की ओर देखा जो अब एक अंधेरा प्रश्न-चिह्न बनकर मेरे सामने खड़ा था। मैंने सोचा मुझे मालूम न था आज़ादी के चिराग तले इतना बड़ा गहरा अंधेरा होगा।

गोपाल कृष्ण गोखले का झुका हुआ अंधेरा बुत प्रश्न-चिह्न बना चुपचाप खड़ा था।

पांच रुपये की आज़ादी

कुल पाँच रुपये, आधे जिसके ढाई रुपये होते हैं, मेरी जेब में ये, जब मैं घर से बाहर निकला। घर से निकलते ही मैंने सोच लिया था कि आज इन पाँच रुपयों में से एक कौडी भी बाकी नहीं रखूँगा। मुद्दत के बाद आज इतना माल हाथ आया है, इसलिए जी खोलकर इसे खर्च करूँगा। दिन-भर बम्बई की सैर करूँगा, गोल्ड फ्लेक के सिगरेट पिऊँगा, पानी-पूड़ी खाऊँगा, रात को कोई सिनेमा-तमाशा देखूँगा, और बारह बजे के बाद घर लौटूँगा। यह सोचकर बरसाती मैंने कन्धे पर रखी और एक अठन्नी को हवा में उछाला। और उसे फिर हाथों में दबोच लिया और चिल्लाकर कहा, "ऊ हू दम चिखा डिक डिक!" जिसका मतलब यह था कि मैं आज बहुत खुश हूँ। खैर

घर से निकलकर मैं "चार बंगले" की सड़क पर हो लिया, जो कोई दो सौ गज के बाद अंधेरी जाने वाली पक्की सडक से जा मिलती है। "चार बंगले" की सड़क की हालत आजकल हिन्दुस्तान जैसी हो रही है, जो कॉमनवेल्थ के अन्दर भी है, बाहर भी। यह सड़क आधी अँधेरी म्युनिसिपैलिटी के पास है, और आधी वरसोवा एरिया कमेटी के पास। इसलिए इसकी कभी मरम्मत नहीं होती। अगर कभी होती है तो बिलकुल इस तरह जिस तरह आजकल हिन्दुस्तान की मरम्मत हो

रही है।

इस सड़क के दोनों तरफ नीची जमीन है, जिसके कीचड़ में झाड़ियां उगी हैं और छोटे-छोटे जौहड़ बन गये हैं, जिनमें समुद्र का पानी भरा रहता है। जब समुद्र में पानी चढ़ता है तो किनारों पर फैलकर इस नीची जमीन में भर जाता है और झाड़ियाँ पानी मे डूब जाती हैं। लेकिन इस समय जब मै घर से निकला समुद्र का पानी नीचे उतर गया था और तराई की रेत में बेहिसाब छोटे-बड़े सूराख नजर आते थे, जिनमें छोटे छोटे कीड़े, घोंघे, केंकड़े और दूसरे समुद्री जानवर रेंगते, बाहर निकलते, चलते-फिरते और घिसटते नजर आ रहे थे। एक लड़का कीचड़ में खड़ा केंकड़े पकड़ रहा था। मैंने सीटी बजाकर उससे कहा—

"कहो हरिदास, बम्बई चलते हो सैर करने ?"

उसने कहा—"मेरा नाम हरिदास नहीं है, भाउकर है, और मैं केंकड़े पकड़ रहा हूं। देखते नहीं ? मै सैर करने कैसे जा सकता हूं ? मैं दिन-भर यहाँ पानी में खड़े होकर केंकड़े पकड़ूँगा, और शाम को बाजार में जाकर बेचूँगा। घर के लिए आटा-दाल लाऊँगा और फिर खाना खाकर सो जाऊँगा। या अपने टूटे हुए 'गारे' को ठीक करूँगा, आँकी को मजबूत बनाऊँगा। मेरे लिए सैर कहाँ ! बस केंकड़े हैं।"

मैंने कहा—"हरिदास, ओह ! हरिदास नहीं, भाउकर, तुम दिन में कितने केंकड़े पकड़ लेते हो ?"

"छः या सात, बहुत हुआ तो दस-बारह" भाउकर ने कहा। उसने छोटेघेरे दार जाल की खपचियों में 'बाम' मछलियों के छोटे-छोटे टुकड़े मजबूती से बाँध दिये और जाल को घुमाकर बड़ी फुरती से झाड़ियों के ऊपर पानी के एक जोहड़ में फेंक दिया। जाल पानी में डूब गया, लेकिन 'तुरबट' पानी के ऊपर तैरते रहे। इन 'तुरबटों' की तरफ इशारा करते हुए मैंने पूछा—"इतने बड़े 'कार्क' के टुकड़े तुम कहाँ से लाते हो ?"

वह हँसकर बोला—"यह कार्क के टुकड़े नहीं हैं। कार्क तो बहुत

मँहगा होता है। इसको हम 'संडाल' लकड़ी से बनाते हैं। यह लकड़ी बिलकुल कार्क की तरह होती है, बल्कि उससे अच्छी होती है।" यह कहकर उसने आहिस्ता से जाल को अपनी तरफ खींचकर फिर एकदम झटके से ऊपर निकाला। लेकिन केंकड़ा भी बड़ा होशियार था, फौरन कूद गया और पानी में जा गिरा। "साला निकल गया।" भाउकर ने खिसियानी हँसी हँसकर कहा।

मैंने भी हँसकर कहा—"हाँ, देखो तो सही, किस कदर यानी कितना शैतान है! कैसे जाल से उछलकर भागा है!"

भाउकर ने कहा—"अरे! बड़ा बदमाश होता है यह। आठ हाथ-पाँव होते हैं इसके।"

"आठ होते हैं?" मैंने हैरान होकर पूछा।

"तुमने कभी केंकड़ा नहीं देखा?" भाउकर ने मुझपर तरस खाते हुए पूछा।

जब मैंने इनकार से सिर हिलाया, तो भाउकर ने अपना जाल ज़मीन पर रख दिया, और काठी को जमीन में गाड़ दिया और आँकी खोलकर उसे उलटकर उसमें से एक केंकड़ा निकाला, और मुस्कराकर कहने लगा—"यह देखो, यह केंकड़ा है। इसके आठ हाथ पाँव हैं, लेकिन ये जो मुँह के पास दो डंक हैं—ये सबसे खतरनाक हैं। इन्हीं से केंकड़ा शिकार करता है।"

भाउकर ने चाकू से डंक पर चोट की। केंकड़े के डंक फैल गए, बन्द हो गए, फैल गए। लेकिन अब वह बिलकुल बेकार थे क्योंकि जड़ के पास वे एक मज़बूत धागे से बँधे हुए थे।

मैंने कहा—"यह केंकड़ा कितने में जायगा?"

"चार आने में।"

"आज कितने केंकड़े पकड़े हैं?"

"अभी तो यही एक है।—और मिलेंगे।"

मैंने उसे एक दुअन्नी दी। वह बोला—"मेरा केंकड़ा चार आने

का है।"

मैंने कहा—"मैं केंकड़ा नहीं ले रहा हूँ। तुम्हें दुअन्नी दे रहा हूँ। तुम्हारे चार पानी के लिए। तुमने मुझे आज बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातें बताई हैं। बस एक बात और बता दो।"

भाउकर ने जाल उठाकर पानी में फेंक दिया और कहने लगा, "पूछो!" उसकी पीठ मेरी तरफ थी।

मैंने पूछा—"अगर तुम्हारे पास एकदम बहुत-सा रुपया आ जाय तो तुम क्या करोगे?"

भाउकर घूमकर मेरे सामने आ गया, और एक पल के बाद बोला, "गन्दे कीचड़ में काम करने से मेरे पाँवों पर जो घाव हो गए हैं, पहले उनका इलाज कराऊँगा। और ..."

"और ...?"

"और फिर शादी करूँगा।" उसने जाल पानी से निकाला। अब के उसमें कोई केंकड़ा नहीं था, बल्कि एक छोटी-सी, चाँदी-सी चमकती मछली थी। भाउकर ने उसे अपने हाथ में ले लिया। वह तड़प रही थी और हाँप रही थी। वह दो-चार पल मछली को ध्यान से देखता रहा। फिर उसने उसे पानी में छोड़ दिया। फिर वह देर तक उसे पानी में तैरते हुए देखता रहा। वह छोटी-सी चाँदी की मछली, जो उसकी जिन्दगी का सुनहरा सपना थी, पानी में तैरती हुई कहीं गुम हो गई। भाउकर ने सिर उठाकर आसमान में दौड़ते हुए बादलों को देखकर और एक ठंडी साँस भरकर कहा—"लेकिन मेरी शादी नहीं होगी।"

मैंने कहा—"क्यों नहीं होगी? अब तो आजादी आ गई है।"

वह बोला—"यह आजादी तो आकाश में उड़ते हुए बादलों की तरह है। मैं तो ऐसी आज़ादी चाहता हूँ जो मेरी मुट्ठी में आ जाय, इन केंकड़े की तरह।"

उसी समय मेरा जी चाहा कि मैं "कावस जी जहाँगीर हाल" में भाउकर का एक लेक्चर रक्खूँ और हिन्दुस्तान के सारे बड़े-बड़े नेताओं

को बुलाऊँ और फिर उनसे पूछूँ कि बताओ जनता इस आजादी की यथार्थता को जानती है या नहीं ?

× × ×

मैं 'चार बंगले' और 'अंधेरी वरसोवा रोड' के नुक्कड़ पर बड़ी देर तक खड़ा रहा। लेकिन वरसोवा से बसें बिलकुल इस तरह भरकर आती थीं जिस तरह बन्द डब्बे में मछलियाँ भरी हुई हों। मैंने सोचा चलो 'चार बंगले' से पहले वरसोवा चलेंगे। फिर वहाँ से अँधेरी आएँगे। और कोई सूरत तो जाने की दिखाई नहीं देती। सो मैंने वरसोवा जाने वाली बस पकड़ी। दो आने का टिकट लिया। वरसोवा पहुँचकर अड्डे पर एक पान खाया। फिर वापिस आकर बस में बैठ गया। इतने में बस चल पड़ी। साढ़े तीन आने टिकट के दिए। कन्डक्टर मेरी तरफ देखकर मुस्कराया। मैं उसकी तरफ देखकर मुस्कराया। वह फिर मेरी तरफ देखकर मुस्कराया। उसके जवाब में मैं फिर मुस्कराने वाला था कि उसने मुझे चुपके से साढ़े तीन के बदले एक आने का टिकट काट दिया। मैंने जरा अचम्भे से टिकट की तरफ देखकर उसकी तरफ घूरकर देखा। वह जवाब में फिर मुस्कराया। लेकिन, अब के उसकी मुस्कराहट में बेहद परेशानी और झेंप-सी थी। जैसे वह मुस्कराहट कह रही हो कि मैं बेईमान नहीं हूँ, मैं गरीब हूँ। मैं दिन रात मेहनत करता हूँ। अपने सारे घर को सँभालता हूँ, तो भी कुछ नहीं सँभलता। कभी कपड़े लत्ते नहीं हैं, तो कभी राशन नहीं है। कभी दवा-दारू के लिए पैसा नहीं है, पगार नहीं है, यद्यपि वरसोवा की आबादी शरणार्थियों के आने से दस गुनी बढ़ गई है, और इसी हिसाब से कम्पनी को लाभ भी हो रहा है। लाभ बढ़ा है और चीजों के दाम भी बढ़े हैं। लेकिन मेरी पगार वही है। इसमें मेरी चाय और बीड़ी के पैसे भी नहीं निकलते। सवेरे से रात के साढ़े दस बजे तक इस बस में खड़ा रहता हूँ, इसकी छत ताकता रहता हूँ, और एक आना, दो आना, ढाई आना और साढ़े तीन आने के टिकट बाँटता हूँ। यह अँधेरी है। यह 'वरसा वाड़ी' है। यह 'शेरू-

विल' है, यह 'वर-बँगला' है। यह 'सत बंगला' है, यह 'पिकनिक कॉटेज' है। यह 'मछलीमार' है। यह 'दरिया महल' है। यह वरसोवा है। यह मेरे जीवन का चक्कर है। एक घण्टी, रुक जाओ। दो घण्टी, चलो। टिकट काटो, आओ, जाओ, फिर आओ और फिर जाओ...

धरती क्या है? नीला आकाश क्या है? लहरों पर सफेद झाग कैसे चमकती है? गोरे पिण्डे किस तरह समुद्र-तट पर सो जाते हैं और काली लटें किस तरह रेत पर बिखर जाती हैं? यह सब 'पिकनिक कॉटेज' में आने वाले शौकीन जानते हैं। हम तो 'पिकनिक कॉटेज' से गुजर जाने वाले हैं, जिनके जीवन में न पिकनिक है, न कॉटेज है। अब अगर आप यह ढाई आने छोड़ देंगे तो मैं सिगरेट-बीड़ी, चाय-पानी ले सकूँगा वरना...

बस कन्डक्टर की मुस्कराहट उसके होंठों में खिंचकर दर्द की एक लम्बी लकीर बन गई थी। और उसके माथे पर पसीने की बूँदें झल-कने लगी थीं। उसकी परेशानी दूर करने के लिए मैं जल्दी-से मुस्करा दिया और अब उसकी मुस्कराहट में एक नई मुस्कराहट इस तरह खिल उठी, जिस तरह बरसाती फुहार में एकाएक धूप चमक उठती है। बस-कन्डक्टर सन्तोष की साँस लेकर और घूमकर दूसरे मुसाफिरों का टिकट काटने लगा।

अँधेरी स्टेशन पर बस रुकी तो मैंने पाँच आने देकर चर्चगेट का टिकट कटाया। यहाँ पर भी टिकट देने वाला खुद रेलगाड़ी का कन्डक्टर होता तो वह भी जरूर कोई गोलमाल करता। मुझे एक आने का टिकट देकर और चार आने खुद अपने पास रखकर मुझे सीधा चर्चगेट पहुँचा देता। इस बेईमान समाज में ईमानदारी वहीं बरती जाती है जहाँ बेई-मानी की गुंजायश न हो। यह सोचकर मैंने मुँह का मज़ा बदलने के लिए पान खाया। एक आने वाले दो गोल्ड फ्लेक सिगरेट लिए। एक सिगरेट जेब में डाला, दूसरा मुँह में लगाकर सुलगाया। स्टेशन के फल वाले के पास बड़े उमदा आम रखे थे। मैंने जोर का एक कश

लगाकर उसका धुआँ उन आमों की तरफ छोड़ दिया, और 'रॉयल क्लास' में आकर बैठ गया, और पास बैठे हुए आदमी से अखबार माँगकर पढ़ने लगा। अखबार के हर पन्ने पर हर कॉलम में किसी लाल सेना, लाल देश और किसी लाल खतरे का उल्लेख था। मैंने सोचा ये पूँजी-पतियों के अखबार ही सबसे ज्यादा कम्युनिस्टों का प्रॉपेगण्डा करते हैं। मुझे अखबार पढ़ते हुए देखकर एक साँवले रंग के चौड़े चकले जवान ने कहा—"क्यों जी, यह शंघाई के बाद लाल सेना आगे कहाँ जाती है? यह अखबार क्या कहता है?"

मैंने कड़ककर पूछा—"क्यों, क्या तुम लाल बावटे वाले हो?"

वह बोला—"मैं मज़दूर हूँ।"

मैंने कहा—"तुम हिन्दुस्तान में रहते हो, फिर चीन की लाल से से क्या सरोकार है?"

उसने फिर कहा—"मैं इसलिए पूछता हूँ क्योंकि मैं मजदूर हूँ।"

मैंने गम्भीरता से कहा—"तो सुनो। लाल सेना शंघाई से आगे बढ़कर फूचाऊ तक पहुँच गई है।" और इसके बाद उसकी रान पर जोर से हाथ मारकर चीखा—"ओ हो दम चिग्गा डिकडिक।"

उसने पूछा—"इसके क्या मतलब है?"

मैंने कहा—"जनाब, मतलब कुछ नहीं। इसका मतलब यही है कि मैं बहुत खुश हूँ।"

वह बोला—"यह क्या बकवास है? मैं खुश होता हूँ तो सीधा कहता हूँ, 'लाल बावटे की जय'।"

मैं हँसने लगा और वह भी हँसने लगा। फिर उसने जोर से मेरी जाँघ पर हाथ मारकर कहा—'बीड़ी पिलाओ।'

मैंने अपनी रान सहलाते हुए उसे गोल्ड फ्लेक का सिगरेट पेश किया। वह बहुत खुश हुआ। कहने लगा—"तुम भले आदमी मालूम होते हो। तुमसे खूब निभेगी। बताओ यहाँ बम्बई में क्या करते हो?"

मैंने कहा—"मैं लेखक हूँ।"

वह बोला—"तब तो बहुत बुरी हालत होगी तुम्हारी।"

"वह कैसे ?"—मैंने पूछा ?

"इसलिए कि जब तक रोटी न मिलेगी किताब कौन पढ़ेगा ? तुम कहीं मजदूरी क्यों नहीं कर लेते ?"

"यह भी तो मजदूरी है।"

"मेरा मतलब इस तरह की मजदूरी से है, जिस तरह मैं, जो मैट्रिक पास हूँ, बम्बई सेन्ट्रल पर कुली गिरी करता हूँ, बोझ उठाता हूँ, मेहनत करता और दूसरे मजदूरों में जागृति फैलाता हूँ। यह मेरे हाथ का निशान देखते हो ? जबड़े पर निशान देखो, यह " उसने पायजामा ऊपर करके टाँग पर घाव का निशान दिखाया। "सब निशान ट्रेड-यूनियन की लड़ाई के तमगे हैं।"

मैंने कहा—"हाँ, बहुत मजबूत दिखाई देते हो।"

उसने कहा—"अब तो कुछ भी नहीं रहा। पहले मैं बहुत तगड़ा था। अब तो चोटें खा-खाकर जिस्म अन्दर से खोखला हो गया है। अब मैं कभी लड़ता हूँ, जोर से चीखता हूँ और नारे लगाता हूँ तो कनपटियाँ दुखने लगती हैं, चेहरे का रंग उड़ जाता है। डाक्टर ने कहा है 'दूध पीओ और बादाम खाओ, छः महीने तक'। अब उस उल्लू को कौन समझाए कि यह पूँजीपतियों का समाज है। इसमें दूध और बादाम मजदूर को नहीं मिल सकते। उसकी किस्मत में भूख है, और बेकारी है, अनपढ़ रहना है और फिर राष्ट्रीय सरकार है।"

मैंने कहा—"मैं अपनी राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं सुन सकता।"

उसने कहा—"अभी जुजुत्सु का ऐसा फेंटा दूँगा कि दिमाग के सारे खाने खाली हो जाएँगे।"

"तुम जुजुत्सु जानते हो ?"

"हाँ, मैं फौज में था, इससे पहले सिपाही था। मैं मलाया और बर्मा में लड़ा हूँ, जापानी फासिस्टों के विरुद्ध। इसके बाद लड़ाई खत्म

हो गई और मैं, जो आज़ादी का सिपाही था, आज़ादी मिलते ही बेकार हो गया। इसीलिए मेरे लिए अभी तक लड़ाई खत्म नहीं हुई। मैं अभी तक फासिस्टों से लड़ रहा हूँ। इसके लिए मुझे जुजुत्सु जानना जरूरी है। इसमें एक खास बात यह है कि चोट एक खास जगह पर ऐसे लगाई जाती है कि बड़े-से-बड़ा दुश्मन चित्त हो जाता है। देखो—हम हाथ की इस हड्डी से काम लेते हैं।" उसने मेरी अँगूठे के नीचे की हड्डी को मसलते हुए कहा।

मैंने कहा—"यह तो बड़ी छोटी-सी हड्डी है, और यहाँ गोश्त भी कितना नरम है?"

उसने कहा—"यह भी एक साइंस है। इस छोटी-सी हड्डी से इन्सान की खोपड़ी तक हिल जाती है। तुम्हें दिखाऊँ?"

मैंने कहा—"खोपड़ी नहीं, यहाँ मेरे हाथ पर तजरबा कर सकते हो।"

सो उसने वहीं तजुर्बा किया। इसके बाद क्या हुआ मुझे पता नहीं। हाँ, जब बम्बई सेन्ट्रल आया तो मैंने देखा मेरे आस-पास बहुत-से आदमी खड़े हैं, और वह मुझे जोर-जोर से सहला रहा है। मुझे होश में आते देखकर कहने लगा—"क्यों, अब क्या हाल है?"

मैंने उठने की कोशिश करते हुए कहा—"कुछ नहीं, मैं बिलकुल ठीक हूँ, कामरेड!"

वह बोला—"कभी बम्बई सैंट्रल आओ तो मुझे जरूर मिलना। किसी से पूछ लेना कि 'वाजिद कुली' कहाँ है। सब जानते हैं। लाल सलाम!"

मैंने कहा—"उहूँ दम चिरा "

उसने घूरकर मेरी तरफ देखा। मैं जल्दी से मुँह मोड़कर बैठ गया। उसी दम गाड़ी भी चल दी, वरना जुजुत्सु का दूसरा दाव मुझे क्रान्ति की किस मंज़िल पर ले जाता...

× × × ×

चर्चगेट पहुँचकर मैं हार्नबी रोड की दुकानों की सजी हुई काँच की खिड़कियों को देखता गया। मैं आज बहुत अमीर था। जेब में चार रुपये और कुछ पैसे थे। और दुकानें खूबसूरत चीज़ों से सजी हुई थीं। आज तो मैं सारी बम्बई खरीदकर ले जाऊँगा—मैंने सोचा।

यहाँ पर घड़ियों की नई दुकान थी। एक घड़ी ऐसी थी जिसका ऊपर से कोई कल-पुर्जा नहीं दीखता था, लेकिन फिर भी चलती थी। मैंने सोचा—"यह है पूँजीपति की घड़ी! साली का कोई पुर्ज़ा ठीक नहीं है तो भी घिसट रही है।" इसके दाम पूछे। दुकानदार ने ढाई सौ रुपये बताए। मैंने सोचा, आगे चलूँ। यहाँ पर एक सिन्धी शरणार्थी की दुकान थी। विलायती रेशमी कमीज़ें शीशे की अलमारियों में जग-मगा रही थीं। कीमत बाईस रुपये, अठारह रुपये, सोलह रुपये और बारह रुपये से कोई नीची नहीं थी। मैं आज बहुत मालदार था, फिर भी यह कमीज़ नहीं खरीद सकता था।

आगे व्हाइटवे लेडला की काँच की दीवारों में से मोमी औरतें पतले ऊँचे साये (फ्राक) पहने झाँक रही थीं। आजकल अमीर औरतें भी ज़िन्दगी से मौत की तरफ जा रही हैं। उनके सिंगार में मोम की गुड़िया का सा ठहराव है। जब ऐसा मेक-अप होता है, तो हरकत नहीं होती। जब हरकत नहीं होती तो ज़िन्दगी नहीं होती। जब ज़िन्दगी नहीं होती तो बदबू होती है जिसे पेरिस का इत्र भी नहीं छिपा सकता। जब पेरिस में भी नहीं छिपा तो यहाँ क्या छिपाएगा जहाँ विदेशी साम्राज्य के साथ स्वदेशी स्वराज की लाश सड़ रही है।

सजी हुई दुकानों पर रेशमी कपड़े थे। कमीज़ें, गरम पतलूनें, घड़ियाँ, फाउन्टेन पेन, बूट, जुराबें, रूमाल, ब्लेड, चीनी की प्लेटें, बरसातियाँ, गलीचे और गुलदान मौजूद थे। और यहाँ फूलदान थे, लेकिन फूल नहीं थे। और हल नहीं थे, फावड़े, दरातियाँ, ट्रैक्टर, फ्रॉम-यार, रैंच और स्पिंडल नहीं थे। हार्नबी रोड पर अनाज नहीं मिलता, फल नहीं मिलते, बच्चों की किताबें नहीं मिलतीं, काम की

मशीनें नहीं मिलतीं। कोई भी काम की चीज़ नहीं मिलती।

मैं चार रुपये लेकर आया था। मगर यहाँ तो दाँव बहुत ऊँचे थे। जितने ऊँचे दाँव, उतने ऊँचे दाम, उतना ऊँचा नाम और उतनी गहरी गरीबी। गरीबी का ख़याल आते ही यह भी ख़याल आया कि सुबह से बेकार घूम रहा हूँ, अभी तक खाना नहीं खाया। फोर्ट में फीरोजशाह मेहता रोड की एक तंग-सी गली में मुझे एक मद्रासी होटल का पता था। यहाँ बहुत अच्छा और सस्ता खाना मिलता है। नौ आने में दही बड़े, डोसा-मसाला और मैसूर पाक खाके और ऊपर से एक मीठा मद्रासी पान चबा के जिसका मज़ा केले के पत्ते-जैसा होता है, मैंने सन्तुष्टि की डकार ली। इसके बाद हार्नबी रोड से घूमता हुआ विक्टोरिया टर्मिनस की तरफ चला गया। विक्टोरिया टर्मिनस बहुत अच्छी जगह है बम्बई में। यहाँ एक तरफ सिनेमा-हाल है, दूसरी तरफ स्टेशन है, तीसरी तरफ फौजी अदालत है। बीच में नेताओं के बुत हैं जिनके ऊपर फरिश्ते पर फैलाए खड़े हैं। चौथी तरफ खाली है जहाँ अगर शैतान का बुत खड़ा कर दिया जाता तो आज के समाज की चौथी चूल भी ठीक से बैठ जाती। लेकिन फिर ख़याल आया कि राष्ट्रीय सरकार के होते हुए इसकी जरूरत ही क्या है?

सिनेमा हाल के पीछे एक बहुत बड़ा खाली मैदान है जहाँ अँग्रेजी-राज्य में पुलिस की परेड हुआ करती थी। आजकल यहाँ खद्दर की नुमायश होती है। यह नुमायश और वह नुमायश। और एक बार अन्तर्राष्ट्रीय नुमायश भी हुई थी, जिसमें यद्यपि दुनिया के हर देश के लोगों ने हिस्सा नहीं लिया था, तो भी कम-से-कम उन देशों के झंडे जरूर थे ताकि दुनिया को मालूम हो जाय कि हिन्दुस्तान ही एशिया का रक्षक-नेता बन सकता है। बम्बई की यह नुमायश थोड़े दिनों तक रही, फिर जल गई। दिल्ली वाली नुमायश अभी तक नहीं जली इसके लिए शायद वाजिब कुली को बुलाना पड़ेगा।

खाना खाने के बाद मैं हमेशा आराम करता हूँ। इसलिए मैं इस

मैदान में पड़कर सो गया। मेरे सिर के ऊपर गुलमोहर का एक पेड़ था। जिसमें लाल कम्युनिस्ट फूल खिले हुए थे। इन पेड़ों की टहनियों पर लाल दुम वाली चिड़िया शोर मचा रही थी, और एक गुजराती लड़की लाल फूलदार साड़ी पहने जा रही थी, और सिनेमा की दीवारों पर लाल शब्दों में लिखा हुआ था—"Red Skeleton in Redhouse" इस लाल खतरे के बीच में यह मेरी ही हिम्मत थी कि मैं आँख बन्द करके सो गया। पता नहीं मैं कितनी देर तक सोया रहा। एका-एक मैं घबराकर जाग उठा। किसी ने बड़े जोर से मेरी कमर में ठोंका दिया था। देखा तो एक चौकीदार खड़ा था।

मैंने पूछा—"क्या बात है ?"

वह बोला—"तुम यहाँ सोने को नहीं सकता है।"

मैंने कहा—"क्यों नहीं सकता है ?"

वह बोला—"हम बोलता है, नहीं सकता है।"

मैंने उसकी हथेली पर आठ आने रख दिए और पूछा—"अब सकता है कि नहीं सकता ?"

उसने अठन्नी जेब में डाली और मुस्कराकर कहने लगा—"अब सकने को सकता है।"

मैंने पूछा—"तुम्हारी ड्यूटी यहाँ कब तक है ?"

वह बोला—"दो कलाक (घंटे) और है।"

मैंने कहा—"मैं दो कलाक और सोता हूँ। तुम इस पेड़ के नीचे खड़े होकर पहरा दो और देखो कोई दूसरा चौकीदार मुझे तंग न करे। दो कलाक के बाद मुझे जगा देना। मैं तुम्हें एक अठन्नी और दूँगा। समझे ?"

उसने सिर हिलाकर कहा—"हूँ।" वह पेड़ के तने से सहारा लगाकर खड़ा हो गया और मैं सो गया। दो घन्टे के बाद उसने मुझे जगा दिया और कहा—"उठो, हमारा ड्यूटी खतम है, दूसरा चौकीदार आने को है।"

मैंने उसे दूसरी अठन्नी देकर कहा—"शाबाश! तुमने बहुत अच्छा किया। मुझे आराम करने दिया। वरना मेरे सिर में दर्द हो जाता। अच्छा! अब बताओ कि यहाँ से तुम अपने घर जाओगे?"

"हाँ।"

"तुम्हारे कितने बच्चे हैं?"

"दो। एक लड़का है, स्कूल जाता है। एक लड़की है, दो साल की। आज मैं उसके लिए विलायती दूध का डब्बा लेकर जाऊँगा," उसने खुश होकर कहा।

मैंने कहा—"जो पगार तुम्हें मिलती है क्या उसमें तुम्हारा गुज़ारा नहीं होता?"

वह बोला—"अगर गुजारा होता तो हमारा क्या भेजा फिरेला है जो दो घण्टे तुम्हारी ड्यूटी देता। उहूँ।" चौकीदार नाराज़ होकर चला गया।

मैं मेट्रो सिनेमा की तरफ बढ़ गया, जहाँ मुर्गीख़ाने की तरह शरणार्थियों के लिए लकड़ी की छोटी-छोटी दुकानें हैं। इन दुकानों पर अधिकतर पुराना [सैकेण्ड हैण्ड] माल मिलता है। पुराने जूते, पुरानी मशीनें, पुराने कपड़े, शरणार्थियों की तरह घिसे हुए और बुरे हाल। और दो-तीन सिन्धी रेस्टराँ भी हैं, जहाँ चाय, आलू की टिकियाँ और पापड़ मिलते हैं। मैंने चाय वाले की दुकान से एक तला हुआ अण्डा खाया। आलू की टिकियाँ जहाँ थीं वहाँ से दो आने में एक आलू की टिकी खाई। फिर दो आने का भुजिया और दो आने की पापड़ी खाई। एक आने की चाय पी। मैदान में सोने से बाल उलझ गए थे इसलिए दो आने का पुराना कंघा खरीदा और उसे बालों में फेरता हुआ आगे निकल गया तो आवाज़ आई—

"आ पुत्तर! खाना खा ले।"

मैंने ध्यान से देखा, एक पंजाबी बुढ़िया थी। बाल सफेद, चेहरे पर झुर्रियाँ और धूप, वर्षा, मेहनत और दुख के निशान थे। दुपट्टा मैला

था लेकिन चेहरे पर ऐसी उदास दु:ख-भरी मुस्कराहट थी जो दिल को अपनी तरफ खींच लेती थी। वह यहाँ एक छोटी-सी दुकान लगाए बैठी थी, एक तरफ तवा रखा था। परात थी, चिमटा था, चूल्हा था और हँडिया में सालन था। आटा गुँधा रखा था। वह चपातियाँ उतारकर दो मुसाफिरों को खिला रही थी। मैं रुक गया।

मुझे रुका देखकर उसने मैले दुपट्टे को अपने माथे पर सरका लिया और मुस्कराकर बोली—"आ पुत्तर, रोटी खा ले। तू पंजाबी मालूम होन्दा हैं।"

मैंने छप्पर के अन्दर जाकर उससे पूछा—"माँ! तू यह काम क्यों करती है?"

वह बोली—"और क्या काम करूँ बेटा? मुझे यही काम आता है। मैंने जिन्दगी भर अपने घरवालों के लिए खाना पकाया है। अब अपने मुसाफिर बेटों के लिए खाना पकाती हूँ।"

मैंने कहा—'मा, तुम कहाँ की रहने वाली हो?"

"पुत्तर, मैं जालन्धर की रहने वाली हूँ। वहाँ मेरा घर था, मेरी ज़मीन थी, मेरे बाल-बच्चे थे, मेरी बहू था, मेरी गाय-भैंसें थीं। घर में दूध शक्कर, इज्जत-आबरू सब कुछ था, लेकिन मेरी गली के बेटों ही ने मेरा सब-कुछ लूट लिया।"

मैंन कहा—' मा, तुम पाकिस्तान क्यों नहीं चली जातीं?"

उसने कहा—"मेरे बच्चों की कबरें उसी जालन्धर के चौराहे पर हैं जहाँ मेरे घर वालों को ज़िन्दा आग में जला दिया गया था। मेरी बहू की लाज और पत भी हिन्दुस्तान में रो रही है, मेरे घर की गाय-भैंसों को भी मेरे ही जानने-पहचानने वाले लोग ले गए हैं और मेरा घर अभी तक जालन्धर में है। उसमें शहर का कोई बड़ा आदमी रहता है। मेरी लड़ाई तो अपने लोगों से है। मैं तो यहीं लड़ूँगी, यहीं मरूँगी। अगर मैं पीरादित्ते की बेटी हूँ तो एक रोज़ जालन्धर फिर वापिस जाऊँगी।"

इतने में एक मुसाफिर और आ गया और कहने लगा—"अम्मा दो आने का सालन दे और दो रोटियाँ दे दे।"

मैं भी एक कोने में बैठकर खाना खाने लगा। भुने हुए गोश्त का सालन था और गरम-गरम रोटी। बड़ा मज़ा आया।

मैंने कहा—अम्मा! तुम यहाँ एक तन्दूर लगा लो, बस!"

वह बोली—"तन्दूर के लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, बेटा! अब मेरे हाथ-पाँव में ताक़त नहीं रही।" वह चुप होकर चूल्हे पर चपाती सेंकने लगी, और उसके चेहरे पर अजीब मुस्कराहट आ गई। और फिर धीरे-से बोली—"जालन्धर में घर के आँगन में मैंने एक तन्दूर बनवाया था, वहाँ मेरी बहू दोपहर को गेहूँ की ऐसी गरम और खस्ता रोटियाँ पकाती थी कि तुम अगर खाते तो पेशावरी नान भी भूल जाते।" एकाएक उसकी आवाज़ भर्रा गई और बोली—"पता नहीं आजकल वह जनम-जली कहाँ है?" अम्मा रोने लगी, उसकी आँखों से आँसू बहने लगे और तवे पर गिरकर सूखते गए। यह आँसुओं में पकी हुई रोटियाँ मेट्रो-सिनेमा के सामने सिर्फ दो आने में मिलती हैं। सोच रहा हूँ कि किसी रोज़ एशिया के सबसे बड़े नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू की यहाँ दावत करूँगा।

× × × ×

मेट्रो-सिनेमा के बाहर ऐसे चमकते चेहरे थे, ऐसी भड़कीली पोशाकें थीं, ऐसी जगमगाती हुई बिजलियाँ थीं। विलियम पॉवल अधनगी औरतों में घिरा हुआ था। औरतें खूबसूरत कपड़े पहने हुए, मर्द चमकती हुई मोटरों से उतरकर उन औरतों को इस तरह घूर रहे थे जैसे उन्हें अपने दाँतों से चबा जायँगे। आँखों में वह भूख थी, वह गरमी थी, वह क्रूरता थी जो पुकार-पुकारकर कह रही थी कि अगर यह औरतें ज़िन्दा होतीं तो ये लोग इन्हें इन इश्तहारों से नीचे उतारकर यहीं मेट्रो-सिनेमा के सामने, सब के सामने, इनकी लाज लूट लेते। हॉलीवुड ने इस भावना का नाम 'एन्टरटेनमेंट' रखा है। और अब यह

एन्टरटेनमेंट हिन्दुस्तानी फिल्मों में उसी तरह घुस आई है जिस तरह डॉलर हिन्दुस्तानी अर्थ-शास्त्र में घुस आया है। और, घटिया अमरीकन-नॉवल हिन्दुस्तानी सभ्यता मे घुस आया है।

साम्राज्य जीवन के हर अंग मे व्यभिचार का समर्थक है। सुन्दरता, सच्चाई, पवित्रता, शान्ति, लाज, घर, खुशी, किताब, फूल, आराम इत्यादि सब चीजों को वह नंगा करके उससे व्यभिचार करता है। इसके बाद उसे मँहगे-सस्ते दामों बाजार मे लाकर बेच देता है।

चीज की इज्जत नहीं है, चीज की कीमत है जो हमेशा घटती-बढ़ती रहती है। कभी इन्फलेशन है तो कभी डिफ्लेशन है। अन्त में सदा युद्ध है, जो कि शान्ति के साथ एक तरह का व्यभिचार है।

अभी खेल शुरू होने में डेढ़ घण्टा बाकी था, लेकिन दस आने की टिकट खरीदने वाले दर्शकों की एक लम्बी लाइन लगी हुई थी। मैं भी जाकर 'क्यू' में खड़ा हो गया। मेरे बाद एक दुबली-पतली काली लड़की आई जो फूलदार छींट का एक तंग फ्रॉक पहने हुए थी। यह फ्रॉक ऊपर से तंग था और नीचे से घेरदार था। बीच में उसने जोर से खूब खींचकर एक पेटी बाँध रखी थी, जिससे उसके शरीर के दो हिस्से हो गए थे। एक धड़ से ऊपर, एक धड़ से नीचे। इसका नाम यारों ने 'खूबसूरती' रखा है। यानी औरत पेटी के खिंचाव से, और ऊँची एड़ी के दबाव से यूँ चलती है कि ऊपर का हिस्सा नीचे और नीचे का हिस्सा ऊपर जाता हुआ मालूम होता है। सीने पर छातियाँ अपनी असली हालत में नहीं बल्कि यूँ तनी हुई दिखाई देती हैं जैसे किसी ने रेंच से पेच ज़ोर से कस दिए हों। इसके बाद चेहरा यूँ लिपा-पुता होता है कि यह मालूम ही नहीं हो सकता कि कितने छिलकों के बाद बादाम की गुठली आती है और कितनी तहों के बाद औरत शुरू होती है? इस ढकोसले का नाम पैसे वालों की समाज ने 'सुन्दरता' रखा है। कई लोग तो इसे 'कला' भी कहते हैं, जो सरासर कलाकारों का अपमान है।

ख़ैर, वह एक ऐसी ही लड़की थी। मैंने उसकी तरफ़ देखा, उसने मेरी तरफ़ नहीं देखा। फिर उसने उस समय देखा जब मैंने उसकी तरफ़ नहीं देखा। फिर हम दोनों ने एक-दूसरे की तरफ तिरछी नजर से देखा।

बाद में तिरछी नजरें धीरे-धीरे सीधी होते-होते यूँ आमने-सामने हो गईं कि हमें मुस्कराना ही पड़ा।

इसके बाद मैंने कहा—"बड़ा लम्बा 'क्यू' है। जाने हमारी बारी आएगी या नहीं?"

वह बोली—"तुम्हारी बारी तो शायद आ जाय, लेकिन मेरी नहीं आएगी।"

मैंने कहा—"अगर मेरी बारी आ गई तो मैं अपना टिकट तुम्हें दे दूँगा।"

उसने अपने कन्धे पर लटके हुए बटुए को ठीक करते कहा—"थैंक यू।"

मैंने पूछा—"अब तो यह पूछ लेने में कोई हर्ज नहीं कि तुम्हारा नाम क्या है।"

"डायना फर्नेन्डिस। और तुम्हारा?"

"मेरा नाम क्रिश्चियन चन्दर है।"

वह हँसी—"यह क्रिश्चियन चन्दर क्या होता है?"

मैंने कहा—"बस, जैसे मुमताज शान्ति होता है, सय्यद अछूत होता है। बस ऐसे ही मेरा नाम भी है।"

वह बोली—"तुम बड़े फनी (Funny) हो।"

मैंने कहा—"तुम चाय पियोगी—सामने के ईरानी रेस्टरां में?"

"चलो, लेकिन फिर 'क्यू' में जगह नहीं मिलेगी।"

"क्यों नहीं मिलेगी?" मैंने कहा—"मैं अभी अपने आगे के आदमी से कहे देता हूँ, तुम अपने पीछे वाले से कह दो।"

जब हमें 'क्यू' के पड़ोसियों ने इजाज़त दे दी तो हम लोग रेस्टर

में चाय पीने चले गए।

चलते-चलते मैंने सुना—हमारे पड़ोसी कह रहे थे कि "साला पटा रहा है।"

दूसरे ने कहा—"लड़की भी क्या है? काली बत्तख है।"

पहले ने कहा—"अरे लड़की तो है?"

डायना ने कहा—"swines"

चाय पी चुके तो डायना ने कहा—"मैं पोटेटो-चिप्स की एक पुड़िया घर ले जाऊँगी।" दो आने वह दिये। फिर वह कहने लगी—"मुझे बालों में लगाने के लिए हरे रंग का क्लिप चाहिए।" चार आने वह दिए। फिर वह कहने लगी कि मैंने उसके कहने से पहले ही कह दिया—"चलो, बुकिंग आफिस खुल गया है, बाद में टिकट नहीं मिलेगा।"

टिकट लेकर हम लोग अन्दर पहुँचे। सिनेमा देखते हुए डायना ने मुझसे ऐसा व्यवहार किया जैसे सचमुच मैं उसे पटा रहा था। हालांकि ऐसी कोई बात नहीं थी। मेरी तरफ देखकर वह दो-तीन बार हँसी और दो-तीन बार उसने चुटकी ली। जब इसके बाद भी मैं अपनी अहिंसा पर अटल रहा तो उसने मेरे कन्धे पर अपने रूखे काले बालों वाला सिर रख दिया और आराम से बैठकर तमाशा देखने लगी।

सिनेमा खत्म होने के बाद उसने मुझसे पूछा—"अब हम कहाँ जाएँगे?"

मैंने कहा—"कहीं नहीं। तुम अपने घर जाओगी और मैं अपने घर।" वह मेरी तरफ हैरानी से देखने लगी।

मैंने पूछा—"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"कोलाबा में।"

"चलो मैं तुम्हें नुक्कड़ तक छोड़ आऊँ।"

वह उखड़े-उखड़े से अन्दाज़ में परेशान होकर चलने लगी, जैसे

वह कुछ समझ न रही हो। मैं भी कुछ नहीं समझ रहा था। और हम दोनों इन्हीं विचारों में उलझे हुए नुक्कड़ के बिजली के खम्भे के नीचे बस का इन्तजार करने लगे। इतने में हल्की-हल्की बारिश होने लगी और मानसून के मोती उसकी झुकी हुई पलकों पर टिकने गए और टूट-टूटकर उसके गालों पर बहते गए। क्या इन बहते हुए मोतियों में उसके आँसुओं का बहाव भी मिला हुआ था? मैं कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि अब बारिश तेज होने लगी थी और ऊपर से बिजली के बल्ब से पानी तैयार हुआ एक पिघली हुई आग की तरह गिर रहा था। और एकाएक मुझे ऐसा लगा कि इस तेज बारिश ने उसकी सारी बदसूरती धो दी है। उसके काले बाल चमक उठे, उसके भीगे हुए गाल तमतमा गए और बारिश के लगातार चुम्बनों से उसके कासनी होंठ रेशम की तरह मुलायम हो गए, यूँ खिल गए जिस तरह बारिश की हल्की फुहार से फूल खिल जाते हैं और बिजली के हण्डे के चारों ओर रोशनी का कुण्डल बन जाता है और सुरमई सड़क पर पिघली हुई चाँदी फैल जाती है। इसी तरह बारिश ने खम्भे के नीचे खड़ी हुई एक उदास और निराश लड़की को अमिट सुन्दरता की सुनहरी पोशाक पहना दी।

मैंने डायना को अपने कन्धे से लगा लिया। उसका उदास चेहरा उस समय बहुत सुन्दर था और उसके काले बालों की लटें भीगी हुई किसी अनजानी सुगन्ध से महक उठीं। मैंने धीरे-से कहा—"गुडबाई डायना।"

वह वहीं रुकी रही और बोली—"तुम मुझसे प्रेम नहीं करोगे?"

मैंने उससे कुछ नहीं कहा। लेकिन मैंने अपने दिल में यह जरूर कहा—नहीं, मैं तुमसे प्रेम नहीं करूँगा। आज तुम घर जाओगी, कोलाबा अपनी मा के पास, अपने छोटे भाई के पास। और उस सच्ची मुहब्बत का इन्तजार करोगी जो तुम्हारी जिन्दगी में आने वाली है। वह जरूर आएगी। ऐसे बेकार ढूँढने से, पराये मर्दों के साथ घूमने से,

वह मुहब्बत नहीं आती है। वह मुहब्बत, मेहनत और काम करने से आती है। जहाँ से वह मुहब्बत आती है, वहीं से वह सुन्दरता आती है जो मेहनत से पैदा होती है। फिर तुम सचमुच हसीन और सुन्दर हो जाओगी और कोई मर्द, कोई काम करने वाला, मेहनत करने वाला मर्द, जो शायद कोई डी 'सूजा' या डी 'सिल्वा' होगा, तुम्हें ब्याह कर ले जाएगा। और फिर तुम अपना छोटा-सा घर बसाओगी और तुम्हें मालूम होगा कि मुहब्बत इसलिए होती है कि ममता हो, और ममता इसलिए होती है कि बच्चा हो, और बच्चा इसलिए होता है कि इन्सान आगे बढ़े और दुनिया में एक नई सुन्दरता, एक नया जीवन पैदा हो।

"जाओ, डायना! जाओ," मैंने डायना के माथे को चूमकर कहा।

डायना की आँखों में आँसू थे। वह मेरी अन-कही बातें कुछ समझी, कुछ नहीं समझी, लेकिन चूँकि वह औरत थी इसलिए बहुत-कुछ समझ गई। उसने बड़े तपाक से मुझसे हाथ मिलाया और मैंने चलते चलते कहा—

"जब तुम्हारे घर बेटा हो, डायना, तो आज की रात की याद में उसका नाम 'क्रिश्चियन चन्दर' रखना।"

वह चलते-चलते हँस पड़ी और हँसते-हँसते बोली—"नहीं! मैं तो उसका नाम 'विलियम पावेल' रखूँगी। कितना खूबसूरत आदमी है।"

"गुडनाईट डायना!"

"गुडनाईट क्रिश्चियन!"

× × ×

पैसे सब ख़त्म हो चुके थे। जेब में सिर्फ दो पैसे थे और एक गोल्ड फ्लेक का सिगरेट। गाड़ी में बिना टिकट बैठा। बाँदरा के करीब मुझे एक टिकट चेकर ने भाँप लिया और मुझे गाड़ी से नीचे उतार दिया। मेरे पास रिश्वत को पैसे भी नहीं थे।

"कुछ तो निकालो—" आखिर तंग आकर टिकट चेकर ने कहा। जब उसने कहा 'कुछ तो निकालो' तो मैंने उसके चेहरे को देखा जिस पर बेईमान समाज के दाग थे और नेकी को कायम रखने की असफल कोशिश थी। टिकट चेकर का चेहरा टिकट चेकर की रसीद बुक था जिसे जगह-जगह पर 'पंच' कर दिया गया था।

मैंने कहा—"मेरे पास दो पैसे हैं।"

उसने झल्लाकर कहा—"तो थाने चलो।"

मैंने उसके कोट को देखा जिसका कॉलर फटा हुआ था, पतलून जो पायचे के पास उधड़ गई थी, टाई जो गाँठ के पास फटी हुई थी। पतले सूखे होंठ अधूरे अरमानों का तार-तार। कमीज के कफ में बटन तक नहीं थे। एकाएक मुझे अपनी कमीज का खयाल आया। मेरी कमीज में सुनहरी बटन थे। कभी दो रुपए चार आने में लिए थे। मैंने अपनी कमीज़ के कफ के बटन उतारे और उसे दे दिए।

उसने ले लिए और कहा—"चलो यही सही।"

फिर उसने मुझे धमकाते हुए कहा—"अगर फिर कभी तुम मुझे बिना टिकट सफर करते हुए नजर आए तो ...."

"तो," मैंने कहा, "मैं तुम्हें एक बटनों की जोड़ी भेंट करूँगा।"

वह हँसने लगा, कहने लगा—"बाबू, तुम सब कुछ जानते हो। नब्बे रुपए तनखाह मिलती है। इसमें गुजर-बसर नहीं होती। और कोई दाद-फरियाद सुनने वाला भी नहीं है।"

गाड़ी ने सीटी दी, मैं भागकर फुटबोर्ड पर चढ़ गया। टिकटचेकर देर तक हाथ हिलाता रहा।

× × × ×

अन्धेरी स्टेशन पर उतरा तो टैक्सी के पैसे नहीं थे। बस जा चुकी थी, अरसा हुआ। घोड़ागाड़ी वाले भी दो रुपए माँगते थे। रास्ता तो बहुत लम्बा नहीं था, लेकिन रात का समय था और रास्ता वीरानी से गुजरता था। मगर रुपए नहीं थे। मजबूरी थी, इसीलिए

पैदल चलना पड़ा।

भरडावाडी से 'शेरू विला' तक मैं सीटी बजाता हुआ आया। यहाँ तक कुछ घरों की आबादी थी, इसलिए सीटी की आवाज भी इतमीनान से निकलती रही। लेकिन 'शेरू विला' के बाद कब्रिस्तान से जो सुनसान शुरू हुई तो सीटी की आवाज एकदम गले से निकलनी बन्द हो गई। न कोई मुसाफिर था, न कोई मोटर गाड़ी नजर आती थी। सडक के दोनों तरफ नीची जमीन थी और किनारे-किनारे घनी झाड़ियाँ उगी थीं।

मन्दिर तक मैं खामोश चला आया। फिर हल्की-हल्की फुहार पडने लगी और मैंने बरसाती ओढ़ ली। जब मैं बरसाती ओढ़ रहा था तो किसी ने पीछे से आकर मुझे पकड़ लिया और कहने लगा—"जो है रख दो, वरना मार डालूँगा।"

मैंने कहा—"जो है वह तुम खुद ही ले लो ना! मैं कुछ कहूँगा तो तुम्हें क्यों विश्वास आने लगा?"

"कितने पैसे हैं तुम्हारे पास?"

"दो पैसे और एक गोल्ड फ्लेक का सिगरेट। कुल मिलाकर डेढ़ आना हुआ।"

"झूठ बोलते हो।"—इतना कहकर उसने मेरी जेबों की तलाशी ले डाली। जब कुछ नहीं निकला तो झुंझलाकर कहने लगा—"यह बरसाती उतार दो।"

मैंने बरसाती उतार कर उसे दे दी। उसने मेरी बरसाती ओढ़ ली। मैंने देखा, उसके हाथ में लोहे की एक मोटी-सी सलाख थी। हम दोनों सडक पर धीरे-धीरे चलते गए। वह मुझसे दुगना लम्बा और कहीं ताकतवर आदमी था, इसलिए शरीफों की तरह चलने में ही भलाई थी।

मैंने उससे पूछा—"सिगरेट पिओगे?"

"हूं"—उसने जवाब दिया। यह 'हूं' हां भी हो सकता था और ना भी।

मैंने सिगरेट के दो टुकड़े किए और एक टुकड़ा उसे दे दिया। सिगरेट पीते-पीते मैंने उससे पूछा—"तुम यह काम क्यों करते हो?"

"न करूँ तो खाऊँ कहाँ से?"—वह चुप हो गया और मेरे साथ चलता गया। फिर झुँझला कर बोला—"आज की रात खाली गई। जाने मुसाफिरों को क्या हो गया है? सभी खाली हाथ आ रहे हैं।"

मैंने कहा—"तुम कोई काम क्यों नहीं करते?"

"काम तो करता हूं। पत्थर की खान में काम करता हूं। मगर उस मजदूरी से कुछ पल्ले नहीं पड़ता। घर में हर समय भूख रहती है। बड़ा कुनबा है, तनख्वाह छोटी है, इसलिए यह काम करता हूँ।"

"इस काम से तुम्हें कितनी आमदनी हो जाती है?"

"कभी पाँच, कभी सात। कभी कोई सेठ हाथ लगा तो सौ-पचास भी मिल जाते हैं। यह धन्धा बुरा नहीं।"

'चार बंगले' के नुक्कड़ पर पहुंचकर उसने कहा—"मेरा जी तो नहीं चाहता कि यह काम करूँ, मगर क्या करूँ, इसका कोई इलाज मेरी समझ में नहीं आता।"

मैंने उससे कहा—"आओ! दो मिनट के लिए इस बेंच पर बैठ जाओ।"

उसने सन्देह की नज़रों से मुझे देखा।

मैंने कहा—"यहाँ इस समय कोई नहीं है। मैं किसी को पुकार भी नहीं सकता, किसी को बुला भी नहीं सकता। इसके पहले कि कोई आए तुम मुझे इस लोहे की सलाख से खत्म करके यहाँ से भाग सकते हो, इसलिए सन्देह करना बेकार है। आओ यहाँ बैठ जाओ।"

उसने लोहे की सलाख उठाकर अपनी गोद में रख ली और बेंच पर बैठ गया।

मैंने कहा—"एक रास्ता है, अगर तुम उसे पसन्द करो तो?"

"वह क्या ?"

"एक मिनट के लिए मान लो कि जिस पत्थर की खान में तुम काम करते हो, वह अगर तुम्हारी हो जाय !"

उसका चेहरा चमक उठा और वह बोला—"मैं खान के मालिक के घर एक बार चला गया था। कितना खूबसूरत था ? रोशनी, फूल, सोने का ..." वह आँख बन्द करके कल्पना में उसका घर देखने लगा।

मैंने कहा—"तुम समझे नहीं। मेरा मतलब यह है कि खान सिर्फ तुम्हारी नहीं, बल्कि उन तमाम लोगों की हो जाय जो उसमें काम करते हैं। सारे मजदूरों और मेहनत करने वालों की।" उसने सोचकर कहा—"तब भी हमें बहुत फायदा है।" वह धीरे-धीरे लोहे की सलाख सहलाने लगा।

मैंने उससे पूछा—"तुमने कभी खान के मज़दूरों से बातचीत की है ?"

"नहीं !"—उसने धीरे से कहा—"वहाँ तो हर आदमी अपनी तकदीर को रोता है।"

मैंने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"तकदीर भी बदल जाती है, जब सब मजदूर मिल जाते हैं। तुम लोग तो जिन्दगी की सच्चाई हो। सोचो तो, दर असल वह खान तुम्हारी है। उसमें काम तुम करते हो, उसे चलाते तुम हो, पहाड़ में बारूद का पलीता तुम लगाते हो। चट्टान को 'डायनामाईट' से तुम उड़ाते हो, पत्थरों को तुम तोड़ते हो, पत्थर काटकर लारी में तुम लादते हो। जब यह सारी मेहनत तुम करते हो तो अपनी मेहनत का फल किसी दूसरे को खाने को क्यों देते हो ?"

मेरी बात सुनते-सुनते उसका चेहरा लाल हो गया। वह सलाख सहला रहा था। सहलाते-सहलाते उसने जोर लगाकर उसे दुहरा कर दिया।

उसने कहा—"यह बिल्कुल नई बात तुमने बताई है।"

मैंने कहा—"नई बात नहीं है, सौ साल पुरानी है। आज़माई भी

जा चुकी है।"

वह सलाख उठाकर उठ खड़ा हुआ। बोला—"हम भी आज़मा सकते हैं। कल मैं अपने साथियों से बात करूँगा और तुम्हें बताऊँगा। कल तुम मुझे यहाँ मिलोगे? इसी वक्त?"

मैंने उसकी बात पर सिर हिला दिया।

उसने मेरी तरफ़ गौर से देखा, लोहे की सलाख़ की तरफ देखा, फिर उसने मुस्कराकर लोहे की सलाख को घुमाकर दूर नीचे भरे हुए पानी मे फेंक दिया। पानी में एक हलचल पैदा हुई जैसे कोई चीज़ डूब जाए और नई चीज़ उभर आए। उसने हाथ बढ़ाकर मेरे हाथ को दबाया और......

—फिर उसने एक बीडी सुलगाई, बरसाती उतारकर मेरे कन्धे पर रख दी और खुद बारिश में भीगता हुआ चला गया।